फरवरी, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – स्वतंत्र साक्षी – पुलिस साक्षी – पुलिस पदधारियों के साक्ष्य को, यदि वह विश्वासोत्पादक पाया जाता है, केवल इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है कि वे पुलिस बल से संबंधित है, तथापि, तात्विक विशिष्टियों के संबंध में ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि की जानी आवश्यक है ।

मधु उर्फ **मधुरंता और एक अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** 273

संसद् के अधिनियम

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (21) – (38)

पृष्ठ संख्या 149 – 308 **[2014] 1 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

प्रो. डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड)

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................... द्वारा मुद्रित ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – फरवरी, 2014 [पृष्ठ संख्या 149 – 308]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

फरवरी, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** महेश नारायण	296
जितेन्द्र रघुवंशी और अन्य **बनाम** बबिता रघुवंशी और एक अन्य	179
धर्म पाल और अन्य **बनाम** हरियाणा राज्य और एक अन्य	201
पंजाब राज्य **बनाम** मदन मोहन लाल वर्मा	263
फैकल्टी एसोसिएशन आफ एम्स **बनाम** भारत संघ और अन्य	224
मधु **उर्फ** मधुरंता और एक अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य	273
माधव और एक अन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य	189
मोदीनसाब कासिमसाब कंचागर **बनाम** कर्नाटक राज्य	149
रामचन्द्र **बनाम** क्षेत्रीय प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड	242
रामस्वरूप और एक अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	160
विपिन जायसवाल **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य	168

संसद् के अधिनियम

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (21) – (38)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 174 और 176 – पुलिस अन्वेषण – अन्वेषक अधिकारी द्वारा शव की मृत्यु-समीक्षा करने के लिए कार्यपालक मजिस्ट्रेट को सूचित न किया जाना – विधि में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिससे कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट की लिखित में अनुज्ञा के बिना या उसकी अनुपस्थिति में अन्वेषण न किया जा सकता हो और न तो मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट और न ही मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट को मूल या सारभूत साक्ष्य की संज्ञा दी जा सकती है तथा इनमें प्रकट होने वाली किसी विसंगति को ऐसी घातक या संदेहास्पद परिस्थिति नहीं कहा जा सकता है जिससे अभियुक्त को संदेह का फायदा प्राप्त हो सके ।

मधु उर्फ **मधुरंता और एक अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** 273

– धारा 190(1)(क), 156(3), 200 और 482 – संज्ञेय अपराध के संबंध में परिवाद – मजिस्ट्रेट की शक्तियां – किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित परिवाद में मजिस्ट्रेट या तो संज्ञान करने से पूर्व पुलिस अन्वेषण का निदेश दे सकता है और ऐसा करते समय संबंधित मजिस्ट्रेट को परिवादी की शपथ पर परीक्षा करना आवश्यक नहीं है और उस अन्वेषण की रिपोर्ट के आधार पर कार्यवाही भी कर सकता है या जब वह एक बार संज्ञान ले लेता है और संहिता के अध्याय 15 में सन्निविष्ट प्रक्रिया प्रारंभ कर देता है तो वह संज्ञान-पूर्व प्रक्रम पर वापस जाकर धारा 156(3) का फायदा नहीं ले सकता है ।

माधव और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य** 189

पृष्ठ संख्या

– धारा 190 और धारा 173 – अपराध का संज्ञान – मजिस्ट्रेट की भूमिका – यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से सहमत नहीं है और उसे यह विश्वास हो जाता है कि पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में रखे गए व्यक्तियों के विरुद्ध भी विचारण बनता है तो उसे मुख्य अभियुक्त के साथ-साथ उनके विरुद्ध भी विचारण करने के लिए समन जारी करने की अधिकारिता है ।

धर्म पाल और अन्य बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** 201

– धारा 193 और धारा 319 – सेशन न्यायालय की अतिरिक्त व्यक्तियों को समन करने की शक्ति – सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द किए जाने पर उन व्यक्तियों के अपराधों का संज्ञान करने की भी अधिकारिता है जिन्हें अपराधियों के रूप में नामित तो नहीं किया गया है किन्तु जिनकी सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रकट होती है ।

धर्म पाल और अन्य बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** 201

– धारा 209 और धारा 193 – अपराध का संज्ञान – सेशन न्यायालय को मामले की सुपुर्दगी – यदि मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान करता है और उसके बाद मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करता है तो उस अपराध का नए सिरे से संज्ञान करना और उसके पश्चात् समन जारी करना विधि के अनुसार नहीं होगा ।

धर्म पाल और अन्य बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** 201

– धारा 482 और 320 – अंतर्निहित शक्ति – विवाह-विषयक विवादों से संबंधित अशमनीय अपराध –

पृष्ठ संख्या

संबंधित पक्षकारों के बीच परस्पर समझौता हो जाने के आधार पर कार्यवाहियों का अभिखंडित किया जाना – उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करने की दृष्टि से समुचित मामलों में दांडिक कार्यवाहियों या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद को अभिखंडित कर सकता है और संहिता की धारा 320 उच्च न्यायालय की शक्तियों को संहिता की धारा 482 के अधीन सीमित अथवा प्रभावित नहीं करती है ।

जितेन्द्र रघुवंशी और अन्य बनाम **बबिता रघुवंशी और एक अन्य** 179

– धारा 482 और 320 – अंतर्निहित शक्ति – विवाह-विषयक विवाद – विवाह के पक्षकारों के बीच समझौता होने पर कार्यवाहियों का अभिखंडित किया जाना – विवाह-विषयक विवादों में न्यायालय का कर्तव्य यथार्थ समझौतों को प्रोत्साहित करना है और विवाह-विषयक विवादों से संबंधित अशमनीय अपराधों में भी न्यायालय यह समाधान हो जाने पर कि पक्षकारों ने अपने विवादों को सौहार्दपूर्ण रूप से और किसी दबाव के बिना सुलझा लिया है न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उक्त अपराधों की बाबत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या शिकायत या पश्चात्वर्ती दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर सकता है ।

जितेन्द्र रघुवंशी और अन्य बनाम **बबिता रघुवंशी और एक अन्य** 179

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 148, 149 के साथ पठित धारा 302, धारा 149 के साथ पठित धारा 452 और 325 – हत्या – नातेदार आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी – मृतक की माता द्वारा हत्या की संपूर्ण घटना का देखा जाना – चिकित्सीय

पृष्ठ संख्या

साक्ष्य जैसे अन्य साक्ष्य से संपुष्टि होना – चूंकि अपीलार्थी ने घटना में मुख्य रूप से भाग लिया है और मृतक की माता ने संपूर्ण घटना घटित होते देखी है और उसके साक्ष्य से चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि भी होती है, इसलिए इन परिस्थितियों में अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषमुक्त नहीं किया जा सकता ।

रामस्वरूप और एक अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 160

– धारा 302 – हत्या – न्यूनतम दंड का अभिवाक् किया जाना – संदेह के परे अपराध का साबित होना – चूंकि अभियोजन पक्ष ने अपना कथन संदेह के परे साबित किया है, विशेषकर अपीलार्थी की अपराध में भूमिका के संबंध में जिसने मृतक को प्राणघातक क्षतियां पहुंचाई हैं, इसलिए अपीलार्थी को विधि द्वारा विहित दंड से कम दंड नहीं दिया जा सकता ।

रामस्वरूप और एक अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 160

– धारा 304-ख और 498-क – दहेज मृत्यु – क्रूरता – ऋण चुकाने के लिए पति द्वारा पत्नी से धन की मांग – मांग का संबंध दहेज से न पाया जाना – चूंकि अपीलार्थी पर चल रहे ऋण का प्रतिदाय करने के लिए रकम की मांग की गई थी जिसका संबंध अपीलार्थी और मृतका के विवाह से नहीं है इसलिए इस प्रकार की गई मांग दहेज की मांग नहीं कहलाएगी परंतु यह क्रूरता की श्रेणी में आएगी और अपीलार्थी धारा 304-ख के अधीन नहीं अपितु धारा 498-क के अधीन दोषी होगा ।

मोदीनसाब कासिमसाब कंचागर बनाम **कर्नाटक राज्य** 149

– धारा 304-ख और धारा 498-क – दहेज मृत्यु और क्रूरता – मृतका के अभियुक्त पति तथा उसके

पृष्ठ संख्या

नातेदारों द्वारा मृतका को तंग किए जाने के संबंध में मृतका के माता-पिता की ओर से सामान्य अभिकथन किया जाना – क्रूरता के संबंध में विशिष्ट कृत्य का उल्लेख न किया जाना – यदि अभियोजन पक्ष ने मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग, अभियुक्त द्वारा मृतका को तंग किया जाना या उसके साथ क्रूरता किया जाना साबित नहीं किया है, तब ऐसी स्थिति में अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 498-क और 304-ख के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता ।

विपिन जायसवाल बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** 168

– धारा 364/302/201/34 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – अपहरण और मृत्यु कारित किया जाना – पारिस्थितिक साक्ष्य – मृत्यु से ठीक पूर्व मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने, अभियुक्तों द्वारा अभियोजन साक्षियों के समक्ष न्यायिकेतर संस्वीकृति किए जाने तथा साक्षियों के साक्ष्य विश्वासोत्पादक पाए जाने पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्तों की दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है ।

मधु उर्फ **मधुरंता और एक अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** 273

– धारा 364 और 302 – अपहरण और मृत्यु कारित किया जाना – मृत्यु दंडादेश – मृत्यु दंडादेश का विकल्प चुनने से पूर्व अपराधी और अपराध की परिस्थितियों के साथ-साथ गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों और अपराध कारित करने की रीति पर विचार किया जाना चाहिए और यदि अपराध कारित करने की रीति ऐसी हो कि न्यायालय की न्यायिक अंतश्चेतना झकझोरती हो, तो मृत्यु दंडादेश दिया जाना

पृष्ठ संख्या

उचित होगा ।

मधु उर्फ **मधुरंता और एक अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** 273

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28)

– धारा 2 – दहेज की मांग – कंप्यूटर का कारबार करने के लिए दहेज की मांग किया जाना – यदि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी पति द्वारा कारबार आरंभ करने के लिए किसी प्रकार की कोई मांग की जाती है तब वह मांग विवाह से संबंधित मांग नहीं मानी जाएगी और वह मांग अधिनियम की धारा 2 के अन्तर्गत 'दहेज की मांग' नहीं कहलाएगी ।

विपिन जायसवाल बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** 168

– धारा 2, 3, 4 और 6 – दहेज का लेना या देना – विवाह के समय पर दहेज की मांग किया जाना – चूंकि विवाह के समय पर 1,000/- रुपए नकद, एक तोला सोना और अन्य वस्तुओं की मांग की गई थी जिस पर मृतका/पत्नी के घर वाले सहमत हो गए थे और उन्होंने अपीलार्थी को यह सामान दिया भी था, इसलिए वह दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3, 4 और 6 के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

मोदीनसाब कासिमसाब कंचागर बनाम **कर्नाटक राज्य** 149

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) – अवैध परितोषण की प्राप्ति – शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त-आयकर अधिकारी द्वारा मांगी गई रिश्वत की शिकायत तारीख 1 जून, 1994 को किए जाने का कथन – उपायुक्त द्वारा कार्यपालक मजिस्ट्रेट को छापामार दल के

पृष्ठ संख्या

सदस्य के रूप में सम्मिलित होने का आदेश तारीख 31 मई, 1994 को किया जाना – अभियोजन पक्ष द्वारा मामले की उत्पत्ति को सही रूप में प्रकट नहीं किए जाने पर अभियुक्त की दोषमुक्ति उचित है ।

पंजाब राज्य बनाम **मदन मोहन लाल वर्मा** 263

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 168 – दावा कार्यवाहियां – बीमाकर्ता को यह दावा करने के लिए कि अंशतः/संपूर्ण दायित्व बीमाकृत व्यक्ति का है अधिकरण के समक्ष ही साक्ष्य पेश करना चाहिए और बीमाकृत व्यक्ति की उपस्थिति पर भी जोर देना चाहिए जिससे पश्चात्वर्ती कार्यवाहियों में, जब बीमाकर्ता संदत्त प्रतिकर की वसूली के लिए बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करता है इस मामले का समाधान सुकर बन जाएगा ।

रामचन्द्र बनाम **क्षेत्रीय प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** 242

– धारा 168, धारा 147 और धारा 95 – प्रतिकर – दुर्घटनाग्रस्त यान के स्वामी के कर्मचारी की हकदारी – ऐसे यान के, जिससे दुर्घटना कारित होती है, स्वामी के कर्मचारी को संदेय प्रतिकर केवल कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन निर्बंधित नहीं किया जा सकता है बल्कि वह मोटर यान अधिनियम के अधीन भी प्रतिकर का हकदार हो सकता है बशर्ते बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों में ऐसा उपबंधित हो ।

रामचन्द्र बनाम **क्षेत्रीय प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** 242

– धारा 168 और धारा 147 – प्रतिकर – दुर्घटनाग्रस्त यान के स्वामी के कर्मचारी द्वारा प्रतिकर

पृष्ठ संख्या

के लिए दावा – बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के बीच प्रभाजन – यदि बीमा कंपनी अधिकरण और उच्च न्यायालय के समक्ष बीमाकृत-स्वामी की अनुपस्थिति में भी कार्यवाही अनुज्ञात करती है और यह अभिवाक् नहीं करती कि पालिसी में कोई अतिरिक्त प्रीमियम संदत्त न किए जाने के कारण उसका दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व तक सीमित है तो इसके परिणाम भी उसे भुगतने होंगे और उच्च न्यायालय का यह निदेश न्यायोचित नहीं होगा कि बीमाकर्ता केवल कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी है ।

रामचन्द्र बनाम **क्षेत्रीय प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** 242

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 15(4), 16(4), 16(1), 14 और 335 – आरक्षण – अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में सुपर-स्पेशियल्टी पदों पर आरक्षण – सहायक आचार्य और उससे ऊपर वाले पदों पर प्रवेश परीक्षा के पश्चात् आरक्षण नीति अपनाना – इंदिरा साहनी वाले निर्णय में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा व्यक्त मत को दोहराते हुए आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और अन्य तकनीकी पदों के लिए सुपर-स्पेशियल्टी प्रक्रम पर योग्यता के संबंध में कोई समझौता नहीं किया जा सकता है इसलिए ऐसे पदों पर आरक्षण नीति अंगीकार करना अननुज्ञेय है ।

फैकल्टी एसोसिएशन आफ एम्स बनाम **भारत संघ और अन्य** 224

– अनुच्छेद 309 और 16 [सपठित उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा (प्रथम संशोधन) नियम, 1990 – नियम 1] – सहायक

पृष्ठ संख्या

निदेशक के पद पर प्रोन्नति – उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा नियम, 1987 के अधीन विज्ञान अधिकारी के पद पर संशोधन नियम, 1990 की अधिनियमिति और प्रवर्तन के पूर्व प्रत्यर्थियों का सेवा में पांच वर्ष पूरा करना – चूंकि प्रत्यर्थियों को विज्ञान अधिकारी के पद पर कार्य करने का पांच वर्ष का अपेक्षित अनुभव है और उन्होंने संशोधन नियम, 1990 के प्रकाशित किए जाने से पूर्व पांच वर्ष की सेवा की अवधि पहले ही पूरी कर ली है, अतः उन्हें सहायक निदेशक के अगले पद पर प्रोन्नत किए जाने के मामले पर विचार करने के लिए पात्र अभिनिर्धारित किया जा सकता है ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **महेश नारायण** 296

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 – स्वतंत्र साक्षी – पुलिस साक्षी – पुलिस पदधारियों के साक्ष्य को, यदि वह विश्वासोत्पादक पाया जाता है, केवल इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है कि वे पुलिस बल से संबंधित है, तथापि, तात्विक विशिष्टियों के संबंध में ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि की जानी आवश्यक है ।

मधु उर्फ **मधुरंता और एक अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** 273

साधारण खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10)

– धारा 5 – नियमों की प्रभावी तारीख – राजपत्र में अधिसूचना का प्रकाशित किया जाना – नियमों को उनके तैयार किए जाने की तारीख से प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है किंतु वे विधिक रूप से समर्थ माने जाएंगे और इस प्रकार वे प्रवर्तनीय तब होंगे जब नियमों को प्रभावी बनाया जाए और जिस तारीख को नियम प्रभावी

पृष्ठ संख्या

बनाए जाएंगे, वह तारीख राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियम प्रकाशित किए जाने की तारीख मानी जाएगी ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **महेश नारायण** 296

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

[2014] 1 उम. नि. प. 149

मोदीनसाब कासिमसाब कंचागर

बनाम

कर्नाटक राज्य

11 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) – धारा 2, 3, 4 और 6 – दहेज का लेना या देना – विवाह के समय पर दहेज की मांग किया जाना – चूंकि विवाह के समय पर 1,000/- रुपए नकद, एक तोला सोना और अन्य वस्तुओं की मांग की गई थी जिस पर मृतका/पत्नी के घर वाले सहमत हो गए थे और उन्होंने अपीलार्थी को यह सामान दिया भी था, इसलिए वह दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3, 4 और 6 के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304-ख और 498-क – दहेज मृत्यु – क्रूरता – ऋण चुकाने के लिए पति द्वारा पत्नी से धन की मांग – मांग का संबंध दहेज से न पाया जाना – चूंकि अपीलार्थी पर चल रहे ऋण का प्रतिदाय करने के लिए रकम की मांग की गई थी जिसका संबंध अपीलार्थी और मृतका के विवाह से नहीं है इसलिए इस प्रकार की गई मांग दहेज की मांग नहीं कहलाएगी परंतु यह क्रूरता की श्रेणी में आएगी और अपीलार्थी धारा 304-ख के अधीन नहीं अपितु धारा 498-क के अधीन दोषी होगा ।

इस मामले में अपीलार्थी का विवाह मृतका के साथ हुआ था जिसने लगभग एक वर्ष बाद आत्महत्या कर ली । अपीलार्थी तथा उसकी माता के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने के पश्चात् मामले का विचारण सेशन न्यायालय के समक्ष किया गया और दोनों अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया । इस आदेश से व्यथित होकर राज्य ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने केवल

अभियुक्त मोदीनसाब को दंड संहिता की धारा 498-क, 304-ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3, 4 और 6 के अधीन दोषी पाया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया परंतु दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया । न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस प्रकार 10,000/- रुपए की मांग दहेज की मांग नहीं है अपितु अपीलार्थी पर चल रहे सोसाइटी के ऋण के संबंध में है । इस न्यायालय ने अप्पासाहेब वाले मामले में दंड संहिता की धारा 304-ख के उपबंधों को निर्दिष्ट किया है, विशेषकर इस धारा से संलग्न उपधारा (1) के स्पष्टीकरण को निर्दिष्ट किया है जिसके अन्तर्गत यह उल्लेख है कि 'दहेज' शब्द का वही अर्थ लिया गया है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में दहेज का अर्थ लिया गया है और यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड संहिता की धारा 304-ख में 'दहेज' शब्द का अर्थ कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् किसी समय उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है । इस मामले में 10,000/- रुपए की रकम की मांग मृतका के माध्यम से अपीलार्थी पर चल रहे सोसाइटी के ऋण का प्रतिदाय करने के लिए की गई थी और इसका कोई भी संबंध अपीलार्थी और मृतका के विवाह से नहीं है । इस प्रकार, यदि अपीलार्थी द्वारा 10,000/- रुपए की मांग की गई थी तब भी इस मांग का संबंध दहेज से नहीं है और दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध नहीं बनता है । (पैरा 7)

न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन अपराध के लिए जिम्मेदार है । दंड संहिता की धारा 498-क तथा उसके स्पष्टीकरण (ख) के अधीन यह उपबंध है कि यदि किसी स्त्री का पति उस स्त्री को या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से इस प्रकार तंग करता है, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा । इस प्रकार, सोसाइटी के ऋण के संबंध में

अपीलार्थी द्वारा की गई 10,000/- रुपए की मांग दहेज संबंधी मांग नहीं कही जा सकती है किन्तु निश्चित रूप से यह संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की विधिविरुद्ध मांग है और अभियोजन पक्ष का स्पष्ट साक्ष्य है जिससे यह दर्शित होता है कि उपर्युक्त 10,000/- रुपए की मांग पूरी न किए जाने के कारण मृतका को अपीलार्थी द्वारा तंग किया गया था । (पैरा 8)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2007] (2007) 9 एस. सी. सी. 721 :
अप्पासाहेब और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 3

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 512.

2000 की दांडिक अपील सं. 805 में कर्नाटक उच्च न्यायालय बंगलूरु के तारीख 11 सितम्बर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री अनिरुद्ध संगनेरिया, बी. सुब्रमण्य प्रसाद, रघुवेंद्र कुमार और वी. के. कुन्दरू

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वसुश्री विश्रुति विजय, नेहा सिंह और अनिता शिनॉय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक ने दिया ।

न्या. पटनायक – यह अपील 2006 की दांडिक अपील सं. 805 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 11 सितम्बर, 2006 के निर्णय के विरुद्ध की गई है ।

2. संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं :–

2.1 अपीलार्थी का विवाह तारीख 21 अप्रैल, 1997 को राजबी के साथ हुआ था । उसने तारीख 29 मार्च, 1998 को आत्महत्या कर ली । (इस संबंध में) मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया और पुलिस निरीक्षक (दहेज विरोधी सेल) द्वारा इस मामले का अन्वेषण किया गया तथा अपीलार्थी और अपीलार्थी की माता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 498-क और 304-ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961

की धारा 3, 4 और 6 के अधीन अपराधों के लिए आरोप पत्र फाइल किया गया ।

2.2 अभियोजन पक्षकथन यह है कि अपीलार्थी का विवाह मृतका राजबी के साथ हुआ था और विवाह के समय पर अपीलार्थी को 1,000/- रुपए नकद और एक तोला सोना दिया गया था और इसके पश्चात् अपीलार्थी ने मृतका से 10,000/- रुपए की मांग करके उसको और अधिक तंग किया और मृतका ने इस प्रकार तंग किए जाने के बारे में अपनी माता को बताया । इसके पश्चात्, मृतका की माता ने इस मांग के प्रति 2,000/- रुपए दिए किन्तु वह 8,000/- रुपए के शेष रकम का संदाय नहीं कर सकी । मृतका अपीलार्थी के साथ अपनी माता के यहां आई और जब अपीलार्थी से यह कहा गया कि मृतका के परिवार में 8,000/- रुपए की शेष मांग को पूरा करने की क्षमता नहीं है, तब मृतका रोते हुए अपने वैवाहिक गृह वापस चली गई और उसने कहा कि उसका जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा । मृतका होली के त्यौहार के दौरान अपनी माता के यहां पुनः आई और उसने तंग किए जाने के बारे में शिकायत की और 8,000/- रुपए की शेष रकम पुनः मांगी किन्तु उसकी माता द्वारा मृतका को उस रकम का संदाय नहीं किया गया और इस घटना के 15 दिनों के भीतर मृतका ने आत्महत्या कर ली ।

2.3 विचारण के दौरान, मृतका की माता की परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में की गई और उसके दो चाचाओं की परीक्षा अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 के रूप में की गई और इन साक्षियों के अतिरिक्त अन्य चार साक्षियों की परीक्षा अभि. सा. 5, अभि. सा. 7, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 12 के रूप में की गई और इन सभी साक्षियों ने 1,000/- रुपए की नकदी और एक तोला सोना तथा 10,000/- रुपए की मांग के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है और इस तथ्य के बारे में भी साक्ष्य दिया है कि 1,000/- रुपए की नकदी और एक तोला सोना वास्तव में अपीलार्थी को उसके विवाह के समय पर दिए गए थे और इन साक्षियों ने इस तथ्य के बारे में भी साक्ष्य दिया है कि 10,000/- रुपए की मांग विवाह के पश्चात् की गई थी जिसके प्रति 2,000/- रुपए का संदाय किया गया था किन्तु 8,000/- रुपयों का संदाय नहीं किया जा सका था जिसके कारण मृतका को तंग किया गया और उसने आत्महत्या कर ली । फिर भी विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को तारीख 2 दिसम्बर, 1999 के अपने निर्णय द्वारा

आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

2.4 इस आदेश से व्यथित होकर, कर्नाटक राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2000 की दांडिक अपील सं. 805 फाइल की और इस आक्षेपित निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को केवल अपीलार्थी के संबंध में उलट दिया और अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 498-क और 304-ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3, 4 और 6 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और अपीलार्थी को धारा 304-ख के अधीन अपराध के लिए सात वर्ष की अवधि का कारावास भोगने का दंडादेश दिया और धारा 304-ख के अधीन अधिनिर्णीत दंडादेश को दृष्टिगत करते हुए उच्च न्यायालय ने धारा 498-क के अधीन अपराध के लिए अलग से कोई भी दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया । दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3, 4 और 6 के अधीन अपराधों के संबंध में, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को तीनों अपराधों के लिए छह-छह मास की अवधि का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया ।

3. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी द्वारा दहेज की कोई भी मांग नहीं की गई है । उन्होंने यह दलील दी है कि 1,000/- रुपए और एक तोला सोना मृतका की माता (अभि. सा. 2) द्वारा अपीलार्थी को 'वरोपचारा' के रूप में दिया गया था जैसाकि मृतका के चाचा अभि. सा. 3 के साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है । 10,000/- रुपए की मांग के संबंध में उन्होंने यह दलील दी है कि मृतका के चाचा (अभि. सा. 3) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि विवाह के छह मास के पश्चात् मृतका ने अपनी माता (अभि. सा. 2) से यह कहते हुए 10,000/- रुपए की मांग की थी कि अपीलार्थी पर सोसाइटी का ऋण बकाया है । अतः, काउंसेल ने यह दलील दी है कि 10,000/- रुपए की मांग दहेज के रूप में नहीं की गई थी अपितु सोसाइटी के ऋण का प्रतिदाय करने के लिए की गई थी । काउंसेल ने **अप्पासाहेब और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि घरेलू खर्चों को पूरा करने और खाद खरीदने के लिए मांगे गए धन को दहेज की मांग नहीं कहा जा सकता है । अतः दंड संहिता की धारा 304-ख के उपबंध लागू नहीं हो सकते जो कि केवल दहेज की

---

[1] (2007) 9 एस. सी. सी. 721.

मांग किए जाने पर ही लागू होते हैं । काउंसेल ने अंत में यह दलील दी है कि यद्यपि सभी अभियोजन साक्षियों ने यह कथन किया है कि 10,000/- रुपए की मांग के संबंध में मृतका को तंग किया गया था, फिर भी अभियोजन पक्ष द्वारा तंग किए जाने या क्रूरता किए जाने के संबंध में किसी भी विशिष्ट कार्य को अपीलार्थी के विरुद्ध साबित नहीं किया गया है ।

4. इसके प्रतिकूल, राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है और यह दलील दी है कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभि. सा. 2, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 5, अभि. सा. 7, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 12 के माध्यम से इस संबंध में स्पष्ट साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि विवाह के समय पर 1,000/- रुपए और एक तोला सोने की मांग की गई थी और विवाह के पश्चात् दहेज के रूप में अपीलार्थी द्वारा 10,000/- रुपए की मांग की गई और यह भी साक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी ने मृतका को तंग किया था जिसके कारण मृतका के पास आत्महत्या करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं रहा । राज्य के विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि निश्चित रूप से यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें यह न्यायालय उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करे ।

5. हमने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय पर विचार किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 10 में अपीलार्थी को अभि. सा. 2, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 5, अभि. सा. 7 और अभि. सा. 12 के साक्ष्य के आधार पर अपराधों का दोषी अभिनिर्धारित किया है । निर्णय का पैरा 10 निम्न प्रकार उद्धृत है :–

> "अभियोजन पक्ष का यह एक विशिष्ट मामला है कि अपीलार्थी के साथ हुए मृतका के विवाह के समय पर 1,000/- रुपए की नकदी, एक तोला सोना और एक घड़ी आदि दिए गए थे और अभियुक्त दहेज के रूप में मृतका से 10,000/- रुपए की मांग करता रहा । इस संबंध में अभि. सा. 2, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 5, अभि. सा. 7 और अभि. सा. 12 का साक्ष्य है । अभियोजन साक्षी हुसैनबी मृतका की माता है और इस साक्षी ने भी अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि विवाह के समय पर एक तोला सोना और 1,000/- रुपए नकद अभियुक्त को संदाय किए गए थे । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि विवाह के छह मास के पश्चात् उसकी

पुत्री और अभियुक्त-1 (पति) के बीच संबंध सौहार्द हो गए किन्तु इसके पश्चात् उसकी पुत्री को 10,000/- रुपए नकद लाने के लिए विवश किया गया और इस संबंध में अभि. सा. 2 के पति के छोटे भाई अर्थात् अब्दुल साब द्वारा 2,000/- रुपए का संदाय किया गया और इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसकी पुत्री रमजान के त्यौहार पर आई उसने उसे तंग किए जाने के संबंध में बताया और मृतका को यह कहकर वापस भेज दिया कि संदाय करने के लिए अब कोई धन नहीं है और उसकी पुत्री अभियुक्त-1 के साथ कुछ दिनों के पश्चात् पुनः आई और उस समय अभियुक्त-1 ने 8,000/- रुपए की मांग की और जब अभि. सा. 2 ने उक्त रकम का संदाय करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की तब मृतका रोती हुई वापस चली गई और उसने कहा कि अब उसका जीवन सुरक्षित नहीं रह सकता और वह पुनः होली के त्यौहार पर आई और उसने धन की मांग की और उसे पुनः धन दिए बिना वापस भेज दिया गया और 15 दिनों के पश्चात् राजबी ने अपने पति के घर में आत्महत्या कर ली । अभि. सा. 2 ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसकी पुत्री ने अभियुक्त द्वारा तंग किए जाने के कारण आत्महत्या की है ।"

6. उच्च न्यायालय द्वारा यह तथ्य अनदेखा किया गया प्रतीत होता है कि 10,000/- रुपए की मांग दहेज की मांग के रूप में नहीं की गई थी अपितु सोसाइटी के ऋण का संदाय करने के लिए की गई थी । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए आक्षेपित निर्णय में अभि. सा. 2 के साक्ष्य का भरपूर अवलंब लिया है और अभि. सा. 2 के इस साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जब मृतका होली के त्यौहार पर अपनी मां के यहां गई थी और उसने धन की मांग की थी, तब उसकी माता ने उससे अपने चाचा से धन मांगने को कहा । इस प्रकार, मृतका का चाचा वह व्यक्ति है जो ठीक प्रकार से यह जानता था कि मृतका के विवाह के संबंध में मृतका से क्या-क्या मांगें की गई थीं । मृतका के चाचा इस्माइलसाब की परीक्षा अभि. सा. 3 के रूप में की गई है और उसका साक्ष्य निम्न प्रकार है :–

"मैं अभियुक्त को जानता हूं और मेरे बड़े भाई की पुत्री का विवाह अभियुक्त-1 के साथ हुआ है । अभि. सा. 2 मेरे बड़े भाई की पत्नी है । मैं अपने भाइयों और माता-पिता के साथ कनागिनहल में

> मौजूद था जहां पर राजबी के विवाह संबंधी बातचीत हुई थी । अमरबी नाम की महिला मध्यस्थ थी । राजबी को दिए गए कुछ आभूषणों के अतिरिक्त एक तोला सोना और 1,000/- रुपयों की मांग अभियुक्त-1 द्वारा की गई थी । विवाह के समय पर राजबी को आधा तोला बोरामाला सारा दिया गया था और तीन आने वजन की कानबालियां तथा तीन आने की बुगदी दी गई थीं । विवाह संबंधी बातचीत के ढाई या तीन मास के पश्चात् राजबी और अभियुक्त-1 का विवाह हुआ और जैसाकि तय किया गया था, मूल्यवान आभूषण नकदी, घरेलू सामान और बिस्तर आदि दिए गए । कपड़े और घड़ी भी दी गई । विवाह के पश्चात् राजबी अभियुक्त-1 के साथ रहने चली गई । इसके बाद से छह मास तक वे सुखी रहे । इसके पश्चात् राजबी ने अभियुक्त पर सोसाइटी का ऋण देय होने के कारण 10,000/- रुपए की मांग की । हमने अपनी असमर्थता व्यक्त की । तथापि, हमने राजबी को यह सांत्वना दी कि शीघ्र ही यह धन उपलब्ध करा दिया जाएगा । राजबी पुनः एक अवसर पर हमारे घर आई । उस समय मेरे भाई ने राजबी को यह कहते हुए 2,000/- रुपए दिए कि वह इस संबंध में अभियुक्त को न बताए अन्यथा वह और अधिक मांग करेगा । इसके पश्चात् अभियुक्त-1 होली के त्यौहार पर हमारे ग्राम आया और उसने शेष धन की मांग की और कहा कि अभियुक्त द्वारा मृतका को तंग किया जा रहा है । इस मांग को पूरा करने के लिए असमर्थता दर्शाई गई । राजबी रोते हुए अपने पति के घर वापस चली गई । तारीख 29 मार्च, 1998 को लगभग 5.30 बजे अपराह्न में यह संदेश प्राप्त हुआ कि राजबी क्षतिग्रस्त हुई है । मैं अकेला उनके घर गया । जब सभी नातेदार कनागिनहल आए तब समय 10.00 बजे अपराह्न था । बहुत से व्यक्ति वहां एकत्र हो गए । शव अस्पताल को भेजा जाने वाला था । राजबी की गर्दन पर निशान बना हुआ था । वहां यह बताया गया कि राजबी की मृत्यु पेट दर्द के कारण हुई है । राजबी ने अभियुक्त द्वारा तंग किए जाने के कारण आत्महत्या की । मैंने सी. ओ. आई., गडग पुलिस और तहसीलदार के समक्ष अपना कथन दिया और विवाह निमंत्रण पत्र तथा फोटो प्रदर्श पी-5 और पी-6 के रूप में चिन्हांकित किए गए हैं ।"

उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विवाह के समय पर सोसाइटी के ऋण के संबंध में 10,000/- रुपए की कोई भी मांग नहीं

की गई थी और केवल 1,000/- रुपए नकद, एक तोला सोना और अन्य वस्तुओं की मांग की गई थी जिस पर मृतका के घर वाले सहमत हो गए थे और उन्होंने अपीलार्थी को यह सामान दिया भी था । अभि. सा. 3 के साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी और मृतका ने छह मास तक सुखी जीवन बिताया और इसके पश्चात् मृतका ने यह कहते हुए 10,000/- रुपए की मांग अपने परिवार से की थी कि अभियुक्त-1 (अपीलार्थी) पर सोसाइटी का ऋण देय है और मृतका के परिवार ने अपनी असमर्थता दर्शाई और उसे यह सांत्वना दी कि इस धन को उपलब्ध कराने के संबंध में बाद में देखा जाएगा और इसके पश्चात् जब मृतका उसके घर आई तब उसे 2,000/- रुपए दिए गए किन्तु शेष धन का संदाय नहीं किया गया और उसने अपीलार्थी द्वारा तंग किए जाने के कारण आत्महत्या कर ली ।

7. इस प्रकार 10,000/- रुपए की मांग दहेज की मांग नहीं है अपितु अपीलार्थी पर चल रहे सोसाइटी के ऋण के संबंध में है । इस न्यायालय ने **अप्पासाहेब** (उपरोक्त) वाले मामले में दंड संहिता की धारा 304-ख के उपबंधों को निर्दिष्ट किया है, विशेषकर इस धारा से संलग्न उपधारा (1) के स्पष्टीकरण को निर्दिष्ट किया है जिसके अन्तर्गत यह उल्लेख है कि 'दहेज' शब्द का वही अर्थ लिया गया है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में दहेज का अर्थ लिया गया है और यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड संहिता की धारा 304-ख में 'दहेज' शब्द का अर्थ कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् किसी समय उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है । इस मामले में 10,000/- रुपए की रकम की मांग मृतका के माध्यम से अपीलार्थी पर चल रहे सोसाइटी के ऋण का प्रतिदाय करने के लिए की गई थी और इसका कोई भी संबंध अपीलार्थी और मृतका के विवाह से नहीं है । इस प्रकार, यदि अपीलार्थी द्वारा 10,000/- रुपए की मांग की गई थी तब भी इस मांग का संबंध दहेज से नहीं है और दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध नहीं बनता है ।

8. तथापि, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन अपराध के लिए जिम्मेदार है । दंड संहिता की धारा 498-क तथा उसके स्पष्टीकरण (ख) के अधीन यह उपबंध है कि यदि

किसी स्त्री का पति उस स्त्री को या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से इस प्रकार तंग करता है, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा । इस प्रकार, सोसाइटी के ऋण के संबंध में अपीलार्थी द्वारा की गई 10,000/- रुपए की मांग दहेज संबंधी मांग नहीं कही जा सकती है किन्तु निश्चित रूप से यह संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की विधिविरुद्ध मांग है और अभियोजन पक्ष का स्पष्ट साक्ष्य है जिससे यह दर्शित होता है कि उपर्युक्त 10,000/- रुपए की मांग पूरी न किए जाने के कारण मृतका को अपीलार्थी द्वारा तंग किया गया था ।

9. दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के अधीन अपराधों के संबंध में इस अधिनियम की धारा 2 के अन्तर्गत 'दहेज' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

> "कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् किसी समय विवाह के पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को या विवाह के किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति को उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है ।"

10. अभियोजन साक्षियों विशेषकर अभि. सा. 2, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 5, अभि. सा. 7, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 12 के साक्ष्यों का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि 1,000/- रुपए नकद और एक तोला सोना तथा अन्य वस्तुएं विवाह के समय पर अपीलार्थी को दी गई थीं । इस प्रकार, उपर्युक्त नकदी और वस्तुएं दहेज के रूप में दी गई हैं । दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दहेज देगा या लेगा अथवा दहेज देना या लेना दुष्प्रेरित करेगा तो वह उसमें उल्लिखित अवधि के कारावास से दंडनीय होगा । तथापि, धारा 3 की उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि उपधारा (1) की कोई बात ऐसी भेंटों को, जो वधू को विवाह के समय दी जाती हैं या उनके संबंध में, लागू नहीं होगी ; और (ख) ऐसी

भेंटों को जो वर को विवाह के समय दी जाती हैं या उनके संबंध में लागू नहीं होगी । तथापि, उपधारा (2) के खंड (क) और (ख) के परंतुक के अधीन यह उपबंध किया गया है कि ऐसी भेंटें इस अधिनियम के अधीन बनाई गई नियमों के अनुसार रखी गई सूची में दर्ज की जाती हैं । इस प्रकार, इस धारा के अंतर्गत स्पष्ट रूप से यह आशय किया गया है कि ऐसी भेटों को जो वधू या वर को विवाह के समय दी जाती हैं दहेज नहीं माना जाएगा । संभवतः, इसी कारण से विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि अपीलार्थी को "वरोपचार" के रूप में कोई सामग्री दी गई थी उसको दहेज प्रतिषेध अधिनियम के उपबंध लागू नहीं होंगे । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3, 4 और 6 के अधीन अपराधों का दोषी है किंतु इन अपराधों को गंभीर नहीं माना है और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 5(1) के परंतुक के अनुसार प्रत्येक अपराध के लिए केवल छह मास का दंड ही अधिरोपित किया है । उच्च न्यायालय द्वारा बरती गई रियायत पर विचार करने पर हम उक्त अधिनियम के अधीन अपराधों के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए आनत नहीं हैं ।

11. परिणामतः, हम दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त करते हैं किंतु दंड संहिता की धारा 498-क और दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखते हैं । हम उक्त अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध के लिए अपीलार्थी को अधिनिर्णीत छह मास के कारावास को कायम रखते हैं और लगभग दो वर्ष का दंडादेश अधिनिर्णीत करते हैं जो अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन अपराध के लिए पहले ही भोग चुका है और हम यह भी निदेश देते हैं कि दंड संहिता की धारा 498-क तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के अधीन दंडादेश साथ-साथ चलेंगे ।

12. यह अपील उपर्युक्त सीमा तक मंजूर की जाती है । जमानत पत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस.

[2014] 1 उम. नि. प. 160

रामस्वरूप और एक अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

12 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति पी. सतशिवम और न्यायमूर्ति जे. एस. खेहर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 148, 149 के साथ पठित धारा 302, धारा 149 के साथ पठित धारा 452 और 325 – हत्या – नातेदार आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी – मृतक की माता द्वारा हत्या की संपूर्ण घटना का देखा जाना – चिकित्सीय साक्ष्य जैसे अन्य साक्ष्य से संपुष्टि होना – चूंकि अपीलार्थी ने घटना में मुख्य रूप से भाग लिया है और मृतक की माता ने संपूर्ण घटना घटित होते देखी है और उसके साक्ष्य से चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि भी होती है, इसलिए इन परिस्थितियों में अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषमुक्त नहीं किया जा सकता ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – न्यूनतम दंड का अभिवाक् किया जाना – संदेह के परे अपराध का साबित होना – चूंकि अभियोजन पक्ष ने अपना कथन संदेह के परे साबित किया है, विशेषकर अपीलार्थी की अपराध में भूमिका के संबंध में जिसने मृतक को प्राणघातक क्षतियां पहुंचाई हैं, इसलिए अपीलार्थी को विधि द्वारा विहित दंड से कम दंड नहीं दिया जा सकता ।

इस मामले में शिकायतकर्ता की दो गाय अभियुक्तों के खेत में घुस आईं और उन्होंने अभियुक्तों की फसल नष्ट कर दी जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्षों की बीच कहा-सुनी हो गई और इसी दौरान लड़ाई में शिकायतकर्ता पक्ष के एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई । अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया और दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 325, 452 और 302 के अधीन अपराधों के लिए सेशन न्यायालय द्वारा विचारण किया गया और उन्हें दोषसिद्ध किया गया । विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्तों ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर के समक्ष अपील फाइल की और उच्च न्यायालय ने अपील इस प्रकार भागतः मंजूर की कि उसने केवल अभियुक्त रामजी लाल, रौशन

लाल और बृज मोहन की दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया और दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 148, 452 और 325 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए पहले से भोगे गए कारावास की अवधि के कारावास का दंड उपान्तरित किया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी रामस्वरूप और चिंटू महते ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मृतक का पुत्र नारायण (अभि. सा. 11) भी इस घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है । इस साक्षी ने घटना देखी है और प्रत्येक अभियुक्त की अपराध में भूमिका का अभिकथन करते हुए संपूर्ण कहानी का उल्लेख किया है । किन्तु इस साक्षी का कथन 14 दिनों के पश्चात् अभिलिखित किया गया था और इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । यदि हम अभि. सा. 11 के साक्ष्य पर विचार न करें, जैसा कि इसके पूर्व विचार किया गया है, आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अभि. सा. 5) अर्थात् मृतक की माता के वृत्तांत को अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है । उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि वर्तमान अपीलार्थी अर्थात् रामस्वरूप और चिंटू महते ने घातक वार किए हैं जिनके कारण बद्री की मृत्यु अस्पताल जाते समय रास्ते में ही हो गई थी । चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार भी वर्तमान अपीलार्थियों के कहने पर उसे पहुंची क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं । (पैरा 10 और 11)

अंत में, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि रामस्वरूप (इस मामले में का अपीलार्थी सं. 1) ने 7 वर्ष, 4 मास और 18 दिन का कारावास भोगा है, और चिंटू महते (इस मामले में का अपीलार्थी सं. 2) ने जिसकी आयु लगभग 80 वर्ष है, 6 वर्ष, 4 मास और 18 दिन का कारावास भोगा है और रियायत का अभिवाक् है । हम अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के उपरोक्त दावे को स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया है विशेषकर उन अपीलार्थियों की अपराध में भूमिका को सिद्ध किया है जिन्होंने घातक क्षतियां कारित की हैं । चूंकि हम दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि कर रहे हैं इसलिए, न्यायालय विधि द्वारा विहित दंड की तुलना में कम दंड अधिनिर्णीत नहीं कर सकता, तथापि, चिंटू महते (इस मामले में का अपीलार्थी सं. 2) की आयु को ध्यान में

रखते हुए, सरकार के समक्ष रियायत हेतु अभ्यावेदन करने के लिए स्वतंत्र है और यदि ऐसा कोई अभ्यावेदन किया जाता है, तब यह सरकार का कार्य है कि वह लागू होने वाले नियमों के अनुसार समुचित आदेश पारित करे । उपरोक्त परिस्थितियों के आधार पर, पहले से भोगे गए कारावास की अवधि में दंडादेश को उपांतरित नहीं किया जा सकता है और अपीलार्थियों के काउंसेल का उक्त निवेदन खारिज किया जाता है । (पैरा 12)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 673.

1992 की दांडिक अपील सं. 82 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर के तारीख 25 अगस्त, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री लखन सिंह चौहान और अनिल श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री विभा दत्त मखीजा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. सतशिवम ने दिया ।

न्या. सतशिवम – यह अपील 1992 की दांडिक अपील सं. 82 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर द्वारा पारित किए गए तारीख 25 अगस्त, 2005 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने उस अपील को भागतः मंजूर किया था और भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 149 के साथ पठित धारा 148, 302, धारा 149 के साथ पठित धारा 452 और 325 के अधीन इस मामले में के अपीलार्थियों के विरुद्ध सेशन मामला सं. 157/1989 में अपर सेशन न्यायाधीश-द्वितीय, शिवपुरी, मध्य प्रदेश द्वारा पारित किए गए तारीख 2 अप्रैल, 1992 के निर्णय की पुष्टि की थी ।

2. **संक्षिप्त तथ्य :**

(क) अभियोजन पक्ष के अनुसार, तारीख 9 सितम्बर, 1989 को लगभग दोपहर 12.00 बजे बद्री (जिसकी अब मृत्यु हो चुकी है) की दो गाय रामजी लाल और बद्री (अभियुक्त) के खेत में घुस आईं और बद्री (अभियुक्त) जिसका वही नाम है जो मृतक का है, की और गायों ने खेत में खड़ी फसल नष्ट कर दी जिसके परिणामस्वरूप उनके बीच कहा-सुनी हो गई । कहा-सुनी के दौरान मृतक बद्री ने अभियुक्त बद्री के सिर पर

लाठी से वार किया, इसके पश्चात् वह अभियुक्त घटनास्थल से भाग गया । तत्पश्चात्, इस मामले में के अपीलार्थी ; रामजी लाल, बद्री, रौशन और बृज मोहन के साथ अपने हाथों में लुहांगी (घातक हथियार) लिए हुए मृतक बद्री के मकान पर पहुंचे ।

(ख) अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि चिंटू महते (इस मामले में का अपीलार्थी सं. 2) ने उसे मकान से बाहर खींच लिया और रामस्वरूप (इस मामले में के अपीलार्थी सं. 1) ने मृतक की बाईं पसली पर लुहांगी से वार किया । रामजी लाल और चिंटू महते ने क्रमशः उसकी गर्दन और बाईं पसली पर वार किए । रौशन ने उसकी गर्दन पर वार किया और अभियुक्त बद्री ने उसके बाएं गाल पर वार किया । अभियुक्तों के उक्त कृत्यों के परिणामस्वरूप मृतक के शरीर पर घातक क्षतियां पहुंचीं जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं ।

(ग) उक्त घटना के दौरान, गौरा बाई (अभि. सा. 5) अर्थात् मृतक की माता अपने पुत्र को बचाने के लिए दौड़ी जिस पर अभियुक्त बद्री ने उसके दाएं हाथ पर लाठी से वार किया जिसके परिणामस्वरूप गौरा बाई को भी क्षतियां पहुंचीं ।

(घ) उसी दिन अर्थात् तारीख 9 सितम्बर, 1989 को मृतक बद्री ने अपनी माता और पुत्र नारायण (अभि. सा. 11) के साथ पुलिस चौकी, अमोल पाठा में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई जिसके आधार पर अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 325 और 452 के अधीन मामला सं. 12/1989 रजिस्ट्रीकृत किया गया । इसके पश्चात्, मृतक बद्री को तत्काल ही चिकित्सा परीक्षा और उपचार के लिए अस्पताल ले जाया गया, किन्तु रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई । आहत गौरा बाई (अभि. सा. 5) को भी चिकित्सा परीक्षा के लिए भेजा गया ।

(ङ) अन्वेषण पूरा किए जाने के पश्चात्, दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 148 और 302 तथा दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 452 और 325 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए सभी अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और यह मामला अपर सेशन न्यायाधीश-द्वितीय, शिवपुरी के न्यायालय को सुपुर्द किया गया और सेशन मामला सं. 157/1989 के रूप में नम्बरीकृत किया गया ।

(च) अपर सेशन न्यायाधीश ने अपने तारीख 2 अप्रैल, 1992 के निर्णय द्वारा सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 148

और 302 तथा धारा 149 के साथ पठित धारा 452 और 325 के अधीन सभी अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया और दंड संहिता की धारा 148 के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने, दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास भोगने तथा दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 452 और 325 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए 2 वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया ।

(छ) अपर सेशन न्यायाधीश के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, सभी अभियुक्तों ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की ग्वालियर न्यायपीठ के समक्ष 1992 की दांडिक अपील सं. 82 फाइल की ।

(ज) तारीख 25 अगस्त, 2005 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने अभियुक्त रामस्वरूप और चिंटू महते (इस मामले में के अपीलार्थी) की सभी आरोपों के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की । अपील के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त बद्री की मृत्यु हो गई और इसी कारण उसके द्वारा फाइल की गई अपील उपशमित कर दी गई । उच्च न्यायालय ने इस मामले में के शेष अपीलार्थियों अर्थात् रामजी लाल, रौशन लाल और बृज मोहन की दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त किया और दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 148, 452 और 325 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए पहले से भोगे गए कारावास की अवधि के कारावास का दंड उपांतरित किया ।

(झ) दोषसिद्धि और दंडादेश पर प्रश्न उठाते हुए इस मामले में के अपीलार्थी रामस्वरूप और चिंटू महते ने उपर्युक्त अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थियों/अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री लखन सिंह चौहान और प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् काउंसेल सुश्री विभा मखीजा को सुना गया है ।

4. इस अपील में विचार के लिए मात्र यह मुद्दा है कि अभियोजन पक्ष ने वर्तमान अपीलार्थियों के विरुद्ध अपना पक्षकथन युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध कर दिया है या नहीं ?

5. चूंकि वर्तमान अपील का संबंध रामस्वरूप और चिंटू महते (इस मामले में के अपीलार्थी) से है, इसलिए सभी अन्य अभियुक्तों की भूमिका का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है । अभियुक्तों के विधिविरुद्ध जमाव और परिवादी की गायों द्वारा फसल नष्ट किए जाने की आरंभिक

घटना के संबंध में कोई भी बड़ा विवाद नहीं है । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री से यह भी स्पष्ट हो गया है कि खेत में कहा-सुनी के पश्चात्, सभी अभियुक्तों ने जो अपने हाथों में लाठियां और हथियार लिए हुए थे, मृतक का पीछा किया और वे उसके घर में घुस आए थे ।

6. अभियोजन पक्ष ने आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी गौरा बाई के साक्ष्य का भरपूर अवलंब लिया है जो कोई और नहीं अपितु मृतक की माता है, और इस साक्षी को भी उस समय क्षतियां कारित हुई थीं जब वह अपने पुत्र को अभियुक्त के हमले से बचा रही थी । इस साक्षी की परीक्षा अभि. सा. 5 के रूप में की गई है ।

7. गौरा बाई (अभि. सा. 5) ने अपने साक्ष्य में, यह कथन किया है कि उसकी गायों ने बद्री के खेत में खड़ी फसल को क्षतिग्रस्त किया है । इस साक्षी ने यह भी स्पष्ट किया है कि जब अभियुक्त बद्री अपनी गायों को तालाब की ओर ले जा रहा था उसका पुत्र बद्री (जिसकी अब मृत्यु हो चुकी है) वहां पहुंचा और उनके बीच गरमा-गरमी हो गई । गौरा बाई के अनुसार, यह घटना उनके मकान के निकट घटित हुई थी और अभियुक्त के खेत गौरा बाई के मकान के सामने स्थित हैं । इस साक्षी ने यह स्पष्ट किया है कि उसके मकान में प्रवेश करने के पश्चात्, अभियुक्तों ने मृतक पर लाठी से वार किए और जब गौरा बाई ने हस्तक्षेप किया तो उसकी भी पिटाई की गई और उसके बाएं हाथ में अस्थिभंग हो गया । इस साक्षी ने विशिष्ट रूप से वर्तमान अपीलार्थियों सहित उन व्यक्तियों को भी नामित किया है जिन्होंने उसके पुत्र के वक्ष पर घातक वार किए थे । गौरा बाई के साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि उसके आहत पुत्र को पुलिस थाने ले जाया गया था और उसी ने घटना के बारे में शिकायत की थी और वहां से उसे उपचार के लिए अस्पताल ले जाया गया था, तथापि, अस्पताल जाने वाले रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई थी । अभि. सा. 5 ने क्षतिग्रस्त साक्षी होकर वास्तव में अभियुक्त के वार से अपने पुत्र को बचाने का प्रयास किया था, उसके संपूर्ण कथन पर विचार करने के पश्चात्, जहां तक वर्तमान अपीलार्थियों का संबंध है, हम विचारण तथा उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के साथ सहमत हैं ।

8. इसमें कोई विवाद नहीं है कि अभि. सा. 5 को भी अपने पुत्र को बचाते समय क्षतियां पहुंची थीं और वह घटनास्थल पर मौजूद थी । डा. आर. के. गोयल (अभि. सा. 14) ने इस साक्षी की चिकित्सा परीक्षा की है

जिन्होंने निम्न प्रकार रिपोर्ट प्रस्तुत की है :–

> "चिकित्सक ने दो गुमटे देखे हैं । एक गुमटे का आकार 3 सें. मी. x 2 सें. मी. है जो दाएं प्रबाहु के मध्य में है, इस क्षति के ऊपर एक विदीर्ण घाव है जिसका आकार 1 सें. मी. x 0.5 सें. मी. है । सूजन आई हुई है और इसे छूने पर दर्द होता है । दूसरा गुमटा बाएं प्रबाहु के ऊपर की ओर है जिसका आकार 1 सें. मी. x 1 सें. मी. है । क्षति सं. 1 के लिए एक्स-रे परीक्षण कराने की सलाह दी गई है । क्षति सं. 2 साधारण प्रकृति की है । दोनों क्षतियां किसी कठोर और कुंद वस्तु द्वारा कारित की गई हैं । राम किशन (अभि. सा. 10) मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तथा नोटिस (प्रदर्श पी/24) का साक्षी है और यह नोटिस मृत्यु समीक्षा तैयार किए जाने के समय पर अभि. सा. 10 को जारी किया गया था ।"

इन परिस्थितियों में, हम अभि. सा. 5 के साक्ष्य को पूर्णतया स्वीकार करते हैं और उसके साक्ष्य पर आधारित दोषसिद्धि स्वीकार्य और कायम रखे जाने योग्य है ।

9. मृतक को अभियुक्त द्वारा पहुंचाई गई क्षतियों के संबंध में विचार करने के लिए डा. एस. पी. जैन (अभि. सा. 4) ने शव का शवपरीक्षण किया है और उन्होंने निम्नलिखित क्षतियां पाई हैं :–

> "1. छाती के बाईं ओर एक गुमटा है जो एमीला तक फैला हुआ है और इसका आकार 8 सें. मी. x 4 सें. मी. है ।
>
> 2. वक्ष के दाईं ओर निचले भाग में एक खरोंच है जिसका आकार 5 सें. मी. x 1 सें. मी. है ।
>
> वक्ष का विच्छेदन करने पर चौथी, पांचवीं, छठी और सातवीं पसली में अस्थिभंग है । फुप्फुसावरण विदीर्ण है । बाएं फेफड़े का मध्य और ऊपरी भाग भी विदीर्ण है । फुप्फुस गुहा में लगभग एक लीटर रक्त जमा है । दोनों कक्ष रिक्त हैं । क्षतियां कठोर और कुंद वस्तु द्वारा चौबीस घंटों के भीतर कारित की गई हैं । चिकित्सक की परीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी/7 है । पुनः परीक्षा किए जाने पर चिकित्सक ने यह राय व्यक्त की है कि शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी/7) में उल्लिखित क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं ।"

10. मृतक का पुत्र नारायण (अभि. सा. 11) भी इस घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है । इस साक्षी ने घटना देखी है और प्रत्येक अभियुक्त की अपराध में भूमिका का अभिकथन करते हुए संपूर्ण कहानी का उल्लेख किया है । किन्तु इस साक्षी का कथन 14 दिनों के पश्चात् अभिलिखित किया गया था और इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । यदि हम अभि. सा. 11 के साक्ष्य पर विचार न करें, जैसा कि इसके पूर्व मत व्यक्त किया गया है, आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अभि. सा. 5) अर्थात् मृतक की माता के वृत्तांत को अविश्वसनीय ठहराने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है ।

11. उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि वर्तमान अपीलार्थी अर्थात् रामस्वरूप और चिंटू महते ने घातक वार किए हैं जिनके कारण बद्री की मृत्यु अस्पताल जाते समय रास्ते में ही हो गई थी । चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार भी वर्तमान अपीलार्थियों के कहने पर उसे पहुंची क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं ।

12. अंत में, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि रामस्वरूप (इस मामले में का अपीलार्थी सं. 1) ने 7 वर्ष, 4 मास और 18 दिन का कारावास भोगा है, और चिंटू महते (इस मामले में का अपीलार्थी सं. 2) ने जिसकी आयु लगभग 80 वर्ष है, 6 वर्ष, 4 मास और 18 दिन का कारावास भोगा है और रियायत का अभिवाक् किया है । हम अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के उपरोक्त दावे को स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया है विशेषकर उन अपीलार्थियों की अपराध में भूमिका को सिद्ध किया है जिन्होंने घातक क्षतियां कारित की हैं । चूंकि हम दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि कर रहे हैं इसलिए, न्यायालय विधि द्वारा विहित दंड की तुलना में कम दंड अधिनिर्णीत नहीं कर सकता, तथापि, चिंटू महते (इस मामले में का अपीलार्थी सं. 2) की आयु को ध्यान में रखते हुए, सरकार के समक्ष रियायत हेतु अभ्यावेदन करने के लिए स्वतंत्र है और यदि ऐसा कोई अभ्यावेदन किया जाता है, तब यह सरकार का कार्य है कि वह लागू होने वाले नियमों के अनुसार समुचित आदेश पारित करे । उपरोक्त परिस्थितियों के आधार पर, पहले से भोगे गए कारावास की अवधि में दंडादेश को उपांतरित नहीं किया जा सकता है और अपीलार्थियों के

काउंसेल का उक्त निवेदन खारिज किया जाता है ।

13. इन परिस्थितियों में, अपील में कोई गुणता नहीं है, इसके प्रतिकूल हम उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से पूर्णतया सहमत हैं, परिणामतः, अपील निष्फल होती है और खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

[2014] 1 उम. नि. प. 168

विपिन जायसवाल

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य

13 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) – धारा 2 – दहेज की मांग – कंप्यूटर का कारबार करने के लिए दहेज की मांग किया जाना – यदि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी पति द्वारा कारबार आरंभ करने के लिए किसी प्रकार की कोई मांग की जाती है तब वह मांग विवाह से संबंधित मांग नहीं मानी जाएगी और वह मांग अधिनियम की धारा 2 के अन्तर्गत 'दहेज की मांग' नहीं कहलाएगी ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304-ख और धारा 498-क – दहेज मृत्यु और क्रूरता – मृतका के अभियुक्त पति तथा उसके नातेदारों द्वारा मृतका को तंग किए जाने के संबंध में मृतका के माता-पिता की ओर से सामान्य अभिकथन किया जाना – क्रूरता के संबंध में विशिष्ट कृत्य का उल्लेख न किया जाना – यदि अभियोजन पक्ष ने मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग, अभियुक्त द्वारा मृतका को तंग किया जाना या उसके साथ क्रूरता किया जाना साबित नहीं किया है, तब ऐसी स्थिति में अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 498-क और 304-ख के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता ।

इस मामले में, मृतका ने अपने पति, सास और श्वसुर की यातनाओं से अभिकथित रूप से तंग आकर स्वयं को आग में जला लिया और इसके

परिणामवश उसकी मृत्यु हो गई । पुलिस ने पति, सास और श्वसुर तीनों को गिरफ्तार किया और उनका विचारण किया गया । विचारण न्यायालय ने तीनों अभियुक्तों को दोषी पाया । तीनों अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने सास और श्वसुर को दोषमुक्त कर दिया किन्तु पति की दोषसिद्धि कायम रखी । अभियुक्त पति द्वारा, उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर, उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने मृतका के पिता और माता क्रमशः अभि. सा. 1 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य का परिशीलन किया है । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 1 ने यह कथन किया है कि विवाह के समय पर सोना, चांदी की वस्तुएं, आभूषण, टेलीविजन, फ्रिज और अन्य बहुत सा घरेलू सामान जिसका मूल्य 2,50,000/- रुपए से अधिक है, अपीलार्थी को दिया गया था और विवाह के पश्चात् मृतका अपीलार्थी के साथ कागजीगुडा स्थित मकान में रहने लगी । तत्पश्चात् उसने यह कथन किया है कि अपीलार्थी नमपाली स्थित फोटोकॉपी-सह-टंकण संस्थान में कार्य करता था और विवाह के छह मास पश्चात् मृतका उनके घर पर आई और उसने यह बताया कि अपीलार्थी उससे 50,000/- रुपए लाने की मांग करता है क्योंकि वह कंप्यूटर खरीदना और अपना कारबार आरंभ करना चाहता है । इसी प्रकार, अभि. सा. 4 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि विवाह के पांच मास पश्चात्, अपीलार्थी ने मृतका को उनके (माता-पिता) घर भेज दिया और जब उसने (माता) मृतका से प्रश्न किया तो मृतका ने यह बताया कि अपीलार्थी 50,000/- रुपए की मांग कर रहा है और यह मांग कंप्यूटर खरीदने और अपना कारबार आरंभ करने के लिए की जा रही है । इस प्रकार, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 4 का यह साक्ष्य है कि अपीलार्थी द्वारा 50,000/- रुपए की मांग विवाह के छह मास पश्चात् की गई थी और वह भी कंप्यूटर खरीदने और कारबार आरंभ करने के लिए । 50,000/- रुपए की इस मांग के संबंध में ही विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध का दोषी पाया है और उसकी दोषसिद्धि कंप्यूटर खरीदने और कारबार आरंभ करने हेतु 50,000/- रुपए की मांग के संबंध में जो अपीलार्थी ने विवाह के छह मास पश्चात् की थी और उच्च न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि के संबंध में विचारण न्यायालयों की निष्कर्षों की पुष्टि भी की है । हमारी राय में, विचारण न्यायालय और उच्च

न्यायालय दोनों ही यह मूल्यांकन करने में असफल रहे कि विवाह के छह मास पश्चात् अपीलार्थी द्वारा कारबार आरंभ करने हेतु कंप्यूटर खरीदने के लिए यदि किसी प्रकार की कोई मांग की गई थी, वह मांग विवाह के संबंध में नहीं थी और वास्तव में वह मांग दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 के अर्थान्तर्गत 'दहेज की मांग' नहीं थी । (पैरा 6)

अपीलार्थी ने, जो कि मृतका का पति है अपने साक्ष्य में प्रतिरक्षा साक्षी 1 के रूप में यह कहा है कि उपर्युक्त पर्ची (प्रदर्श डी-19) स्वयं मृतका द्वारा लिखी गई है और उसी के द्वारा हस्ताक्षरित की गई है और ऊपर उल्लिखित उसके साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि वह मृतका के हस्तलेख और हस्ताक्षर से परिचित था, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय, किसी न किसी प्रकार मृतका के हस्तलेख की तुलना साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 73 के अधीन मृतका के अन्य किसी हस्तलेख और हस्ताक्षरों से कर सकते थे । अनुकल्पतः, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के अधीन विशेषज्ञ की राय ले सकते थे कि हस्तलेख और हस्ताक्षर मृतका के हैं या नहीं । किन्तु दुर्भाग्यवश, न तो विचारण न्यायालय ने और न ही उच्च न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम के इन उपबंधों का अवलंब लिया है और इसके बजाय उन्होंने अपनी काल्पनिक तर्कणा द्वारा अपीलार्थी की इस प्रतिरक्षा को अविश्वसनीय ठहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श डी-19 मृतका द्वारा नहीं लिखी जा सकती थी । न्यायालय की सुविचारित राय में, प्रतिरक्षा साक्षी 1 (अपीलार्थी) के साक्ष्य और प्रदर्श डी-19 से अभियोजन वृत्तांत युक्तियुक्त रूप से संदिग्ध हो जाता है कि दहेज की मांग को लेकर मृतका को तंग किया गया था या उसके साथ क्रूरता की गई थी । न्यायालय के मतानुसार, सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर था कि वह संदेह के परे दंड संहिता की धारा 498-क के संघटक को साबित करता और धारा 498-क के अधीन अपराध का संघटक यह है कि अभियुक्त ने मृतका के पति के रूप में मृतका के साथ दंड संहिता की धारा 498-क के स्पष्टीकरण में यथापरिभाषित क्रूरता की है । इसी प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के अधीन न्यायालय द्वारा यह उपधारणा करने के लिए कि अपीलार्थी ने दंड संहिता की धारा 304-ख में यथापरिभाषित दहेज मृत्यु कारित की है, अभियोजन पक्ष को, मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग अभियुक्त द्वारा मृतका को तंग किया जाना या उसके साथ क्रूरता किया जाना साबित करना चाहिए । चूंकि अभियोजन पक्ष ने संदेह के परे तंग किए जाने या क्रूरता किए जाने के संघटक को साबित नहीं किया है,

इसलिए दंड संहिता की धारा 498-क और 304-ख के अधीन अपराध नहीं बनता है । (पैरा 8 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2007] (2007) 9 एस. सी. सी. 721 :
अप्पासाहेब और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 1431.

2003 की दांडिक अपील सं. 544 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के तारीख 11 दिसम्बर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री ए. टी. एम. रंगरामानुजम (वरिष्ठ अधिवक्ता), प्रभाकर शर्मा, दीपांकर दास, देवश सिंह, शांति कुमार जैसानी और (सुश्री) अणु गुप्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री मयूर आर. शाह, डी. महेश बाबू, (सुश्री) सुचित्रा ह्रंगख्वाल, अमजद मकबूल, अमित के. नयन और एम. बाला शिवुदु

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक ने दिया ।

न्या. पटनायक – यह 2003 की दांडिक अपील सं. 544 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तारीख 11 दिसम्बर, 2006 के निर्णय के विरुद्ध की गई है ।

2. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 4 अप्रैल, 1999 को 2.15 बजे अपराह्न में ज्ञानेश्वर जायसवाल द्वारा पुलिस थाना मंगलहाट, हैदराबाद में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इत्तिलाकर्ता द्वारा यह कथन किया गया है कि उसकी पुत्री मीनाक्षी जायसवाल का विवाह तारीख 22 फरवरी, 1996 को अपीलार्थी के साथ हुआ था और विवाह के समय पर उसने पर्याप्त सोने के आभूषण, चांदी के सामान, फर्नीचर, इलैक्ट्रोनिक सामान आदि जिसका मूल्य

2,50,000/- रुपए से अधिक था, दिया था किन्तु मीनाक्षी के विवाह के समय से ही उसके साथ उसके पति विपिन जायसवाल, मीनाक्षी के श्वसुर प्रेम कुमार जायसवाल और सास यशोदा बाई तथा उसकी ननद सुप्रिया द्वारा शारीरिक और मानसिक यातना का व्यवहार किया जाने लगा और पर्याप्त दहेज न लाने के कारण बहुत से अवसरों पर उन्होंने उस पर बुरी तरह हमला किया । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह भी कथन किया गया है कि तारीख 2 अप्रैल, 1999 को इत्तिलाकर्ता को अपीलार्थी से एक कॉल प्राप्त हुई और वह अपने नातेदारों के साथ अपीलार्थी के घर यह पता लगाने कि क्या हुआ है तथा अपने यहां होने वाले कार्यक्रम के लिए निमंत्रण देने हेतु गया किन्तु उन सभी ने उसको गालियां दीं और अपीलार्थी ने उसे धक्के मार कर घर से निकाल दिया परन्तु उसने अपनी पुत्री की सुरक्षा और उसके कल्याण के भय से इस मामले की रिपोर्ट पुलिस में नहीं की । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह भी कथन किया गया है कि तारीख 4 अप्रैल, 1999 को लगभग 1.00 बजे अपराह्न में जब वह घर पर वापस आया तब उसे उसके पुत्र ने टेलीफोन द्वारा यह सूचना दी कि मीनाक्षी को जली हुई गंभीर क्षतियां पहुंची हैं और उसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी के मकान में उसकी मृत्यु हो गई है । पुलिस ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख के अधीन दांडिक मामला रजिस्ट्रीकृत किया और मामले का अन्वेषण किया तथा अपीलार्थी एवं अन्य नातेदारों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 304-ख और 498-क के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

3. विचारण के दौरान अन्य साक्षियों के अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने मृतका के पिता (इत्तिलाकर्ता) की परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में की है, अभि. सा. 1 के चचेरे भाई की परीक्षा अभि. सा. 2 और मृतका की माता की परीक्षा अभि. सा. 4 के रूप में की है । अपीलार्थी ने स्वयं को साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया है और उसकी परीक्षा प्रतिरक्षा साक्षी 1 के रूप में की गई है और उसने यह प्रतिरक्षा ली है कि मृतका ने अपने मृत्यु के पूर्व आत्महत्या के संबंध में एक लिखत छोड़ी थी । जिसमें उसने यह कथन किया है कि उसने अपीलार्थी या उसके परिवार के सदस्य द्वारा किसी भी प्रकार तंग किए जाने के कारण आत्महत्या नहीं की है किन्तु ऐसा उसने स्वयं अपने माता-पिता के द्वारा तंग किए जाने पर किया है । तथापि, विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा संबंधी साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया है और अपीलार्थी और उसके अन्य नातेदारों को दंड संहिता की धारा 304-ख और 498-क के अधीन दोषसिद्ध किया है । विचारण न्यायालय ने विशेषकर यह अभिनिर्धारित किया है कि अभिलेख पर यह सामग्री है कि मृतका की

मृत्यु के दो दिन पूर्व उसके पिता (अभि. सा. 1), उसके नातेदार (अभि. सा. 2) को मृतका द्वारा बुलाया गया था और यह बताया गया कि अपीलार्थी और उसके सास, श्वसुर द्वारा उसे अपीलार्थी द्वारा मांगी गई रकम का संदाय न किए जाने पर तंग किया जा रहा है और जब अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 अपीलार्थी के मकान पर गए, उन्हें अपीलार्थी द्वारा गालियां दी गईं और तारीख 4 अप्रैल, 1999 को अभि. सा. 1 और अन्य व्यक्तियों को अपीलार्थी के एक पड़ोसी सुरेश कुमार द्वारा इस घटना के बारे में सूचना दी गई । उपर्युक्त और अन्य साक्ष्य से विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मृतका के साथ अभियुक्तों द्वारा यातनापूर्ण व्यवहार किया गया था और उसे तंग किया गया था जिसका मुख्य कारण अपीलार्थी को अभि. सा. 1 द्वारा 50,000/- रुपए का संदाय न किया जाना था । अपीलार्थी और अपीलार्थी के अन्य नातेदारों ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 की दांडिक अपील सं. 544 फाइल की और उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपीलार्थी के अन्य दो नातेदारों (अभियुक्त 1 और अभियुक्त 3) को दोषमुक्त कर दिया किन्तु दंड संहिता की धारा 304-ख और 498-क के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखी ।

4. हमारे समक्ष सुनवाई किए जाने के दौरान, अपीलार्थी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा दहेज की मांग के संबंध में निकाले गए निष्कर्ष 50,000/- रुपए से संबंधित हैं । उन्होंने यह दलील दी है कि 50,000/- रुपए की इस मांग का उल्लेख प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-1) में नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि किसी भी स्थिति में, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो गया है कि अपीलार्थी द्वारा की गई 50,000/- रुपए की यह मांग दहेज की मांग नहीं है किन्तु यह वह रकम है जो अपीलार्थी कंप्यूटर खरीदने तथा अपना कारबार आरंभ करने के लिए मृतका के परिवार से लेना चाहता था । उन्होंने यह भी दलील दी है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय को आत्महत्या संबंधी लिखत (प्रदर्श डी-19) को अविश्वसनीय नहीं ठहराना चाहिए था । इस संदर्भ में, विद्वान् काउंसेल ने यह स्पष्ट किया है कि आत्महत्या संबंधी लिखत (प्रदर्श डी-19) पर हस्ताक्षर मृतका द्वारा किए गए तात्पर्यित हैं, जो प्रदर्श डी-1 अर्थात् मृतका के उस प्रवेश पत्र पर किए गए हस्ताक्षर से मेल खाते हैं जो मृतका को मार्च, 1998 में परीक्षा में बैठने के लिए डा. बी. आर. अम्बेडकर मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा जारी किया गया था ।

5. इसके प्रतिकूल, राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने अभियोजन साक्षियों विशेषकर अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य पर यह साबित करने के लिए चर्चा की है कि दहेज की मांग केवल 50,000/- रुपए की ही नहीं की गई थी अपितु अन्य सामान भी मांगा गया था । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 के अधीन दहेज को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – दहेज से कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् किसी समय उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है । उन्होंने यह दलील दी है कि 'विवाह के पक्षकारों के विवाह के संबंध में' अभिव्यक्ति के अन्तर्गत कंप्यूटर खरीदने के लिए अपीलार्थी द्वारा की गई 50,000/- रुपए की मांग आती है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि जहां तक आत्महत्या-नोट (प्रदर्श डी-19) का संबंध है, इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता है कि यह नोट मृतका द्वारा लिखा गया है जो केवल मैट्रिक पास थी और उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में ठोस कारण उल्लिखित किए हैं कि आत्महत्या-नोट पर यह विश्वास क्यों नहीं किया जाना चाहिए कि यह मृतका द्वारा लिखा गया है । काउंसेल ने यह दलील दी है कि किसी भी स्थिति में प्रतिरक्षा साक्षी 1 द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर, न्यायालय यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकता है कि आत्महत्या-नोट मृतका द्वारा लिखा गया था न कि अन्य किसी व्यक्ति द्वारा । उन्होंने यह दलील दी है कि चूंकि अभियोजन पक्ष ने यह साबित कर दिया है कि मृतका से केवल दहेज की मांग ही नहीं की गई थी अपितु उसके मृत्यु के कुछ पूर्व उसके साथ क्रूरता भी की गई थी, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 304-ख और धारा 498-क दोनों के अधीन ठीक ही दोषी अभिनिर्धारित किया है ।

6. हमने मृतका के पिता और माता क्रमशः अभि. सा. 1 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य का परिशीलन किया है । हमारा यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 1 ने यह कथन किया है कि विवाह के समय पर सोना, चांदी की वस्तुएं, आभूषण, टेलीविजन, फ्रिज और अन्य बहुत सा घरेलू सामान जिसका मूल्य 2,50,000/- रुपए से अधिक है, अपीलार्थी को दिया गया था और विवाह के पश्चात् मृतका अपीलार्थी के साथ कागजीगुडा स्थित मकान में रहने लगी । तत्पश्चात् उसने यह कथन किया है कि अपीलार्थी

नमपाली स्थित फोटोकॉपी-सह-टंकण संस्थान में कार्य करता था और विवाह के छह मास पश्चात् मृतका उनके घर पर आई और उसने यह बताया कि अपीलार्थी उससे 50,000/- रुपए लाने की मांग करता है क्योंकि वह कंप्यूटर खरीदना और अपना कारबार आरंभ करना चाहता है । इसी प्रकार, अभि. सा. 4 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि विवाह के पांच मास पश्चात्, अपीलार्थी ने मृतका को उनके (माता-पिता के) घर भेज दिया और जब उसने (माता के) मृतका से प्रश्न किया तो मृतका ने यह बताया कि अपीलार्थी 50,000/- रुपए की मांग कर रहा है और यह मांग कंप्यूटर खरीदने और अपना कारबार आरंभ करने के लिए की जा रही है । इस प्रकार, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 4 का यह साक्ष्य है कि अपीलार्थी द्वारा 50,000/- रुपए की मांग विवाह के छह मास पश्चात् की गई थी और वह भी कंप्यूटर खरीदने और कारबार आरंभ करने के लिए । 50,000/- रुपए की इस मांग के संबंध में ही विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध का दोषी पाया है और उसकी दोषसिद्धि कंप्यूटर खरीदने और कारबार आरंभ करने हेतु 50,000/- रुपए की मांग के संबंध में जो अपीलार्थी ने विवाह के छह मास पश्चात् की थी और उच्च न्यायालय ने दंड संहित की धारा 304-ख के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि के संबंध में विचारण न्यायालयों की निष्कर्षों की पुष्टि भी की है । हमारी राय में, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ही यह मूल्यांकन करने में असफल रहे हैं कि विवाह के छह मास पश्चात् अपीलार्थी द्वारा कारबार आरंभ करने हेतु कंप्यूटर खरीदने के लिए यदि किसी प्रकार की कोई मांग की गई थी, वह मांग विवाह के संबंध में नहीं थी और वास्तव में वह मांग दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 के अर्थान्तर्गत 'दहेज की मांग' नहीं थी । इस न्यायालय ने **अप्पासाहेब और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "'दहेज' शब्द की उपर्युक्त परिभाषा को दृष्टिगत करते हुए, 'दहेज' से – कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् किसी समय उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है । अतः, संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति का देने या लेने का संबंध पक्षकारों के विवाह के साथ होना चाहिए

---

[1] (2007) 9 एस. सी. सी. 721.

और संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के दिए जाने या लिए जाने का आपसी संबंध विवाह के पक्षकारों के साथ होना आवश्यक है । दांडिक उपबंध होने के कारण, इसका सावधानीपूर्वक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । भारत में दहेज देना अत्यंत प्रचलित सामाजिक प्रथा है । कानून के निर्वचन का सुस्थापित सिद्धांत यह है कि किसी विशिष्ट व्यापार, काराबार या संव्यवहार से संबंधित अधिनियम पारित किया जाता है और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनसे प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार परिचित होता है कि वह उनके विशिष्ट अर्थ को जानता और समझता है, तब उन शब्दों का अर्थ उसी विशिष्ट अर्थ को ध्यान में रखते हुए लगाया जाएगा । [भारत संघ **बनाम** गरवेयर नायलॉन्स लिमिटेड, ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3509 और केमीकल्स एंड फायबर्स ऑफ इंडिया **बनाम** भारत संघ, ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 558 वाले मामले देखिए ।]"

7. किसी भी स्थिति में, अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 304-ख और 498-क के अधीन दोनों अपराधों का दोषी ठहराने के लिए अभियोजन पक्ष के लिए संदेह के परे यह साबित करना अपेक्षित है कि अभियुक्त द्वारा मृतका के साथ क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था । अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य से, विशेषकर अभि. सा. 1 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य से हमारा यह निष्कर्ष है कि इन साक्षियों ने मृतका के प्रति अपीलार्थियों द्वारा तंग किए जाने के संबंध में सामान्य अभिकथन किए हैं और साक्ष्य में अपीलार्थी द्वारा की गई क्रूरता या तंग किए जाने जैसे किसी भी विशिष्ट कार्य का उल्लेख नहीं किया है । इसके प्रतिकूल, प्रतिरक्षा साक्षी ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 4 अप्रैल, 1999 को अर्थात् उस दिन जब घटना घटित हुई थी, वह अपनी माता (अभियुक्त 2) के साथ निकट स्थित मंदिर गया था और उसका पिता (अभियुक्त 3) राशन लाने के लिए बाजार गया था और उसकी पत्नी (मृतका) लगभग 1.00 बजे अपराह्न में घर पर अकेली थी, तब उन्हें किसी व्यक्ति द्वारा यह सूचना दी गई कि उनके मकान से धुंआ निकल रहा है और उनके मकान में आग लगी हुई है । वह और उसकी माता अपने मकान की ओर तत्काल दौड़े और उस समय तक मकान पर अत्यधिक भीड़ जमा हो गई थी और वहां पर पुलिस भी मौजूद थी । उसे और उसके परिवार के सदस्यों को पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और एक मास पश्चात् उन्हें जमानत पर छोड़ दिया गया । प्रतिरक्षा साक्षी 1 ने आगे जो कथन किया है वह

अपीलार्थी की प्रतिरक्षा के प्रयोजन हेतु सुसंगत है जो निम्न प्रकार उद्धृत है :–

> "अपने घर की सफाई करते समय, हमने अपने ड्रेसिंग टेबल पर एक पर्ची देखी । उक्त पर्ची मेरी पत्नी द्वारा लिखी हुई थी जो उसी के हस्तलेख में थी और उस पर उसके हस्ताक्षर भी थे । प्रदर्श डी-19 उक्त पर्ची है । मैंने प्रदर्श डी-19 पर अपनी पत्नी के हस्तलेख की शनाख्त की है क्योंकि मेरी पत्नी प्रतिमास खरीदे जाने वाले घरेलू सामान की पर्ची लिखा करती थी और प्रदर्श डी-19 को देखकर मुझे पता चल गया कि वह केवल मेरी पत्नी द्वारा ही लिखी गई है । मैंने तत्काल ही प्रदर्श डी-19 पुलिस थाना मंगलहाट को दे दी और मैंने उनसे उस पर्ची को प्राप्त करने के लिए कहा किन्तु उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया ।"

उपर्युक्त साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि घर की सफाई करते समय अपीलार्थी को अपनी पत्नी द्वारा लिखी पर्ची अचानक प्राप्त हुई जिस पर उसकी पत्नी के हस्ताक्षर थे । इस पर्ची को प्रदर्श डी-19 के रूप में चिन्हांकित किया गया है और अपीलार्थी ने प्रदर्श डी-19 पर मृतका के हस्तलेख और हस्ताक्षर की शनाख्त की है जो हिन्दी में लिखे हुए हैं । प्रदर्श डी-19 का अंग्रेजी अनुवाद उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में उद्धृत किया गया है जिसका सारांश निम्न प्रकार है :–

> "मैं, मीनाक्षी पत्नी विपिन कुमार एतद्द्वारा निष्पादित करती हूं कि मैं स्वस्थचित्त होकर तथा स्वेच्छया यह कहती हूं कि मेरी मृत्यु के लिए कोई भी व्यक्ति उत्तरदायी नहीं होगा । मेरे माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों ने मेरे पति को बहुत तंग किया है । मैं अपने जीवन से परेशान आकर यह कदम उठा रही हूं । मेरे कारण यहां झगड़ा होता रहता है, इसलिए मैं अपना जीवन समाप्त करना चाहती हूं और मैं सभी से क्षमा मांगती हूं ।"

प्रदर्श डी-19 से यह प्रतीत होता है कि मृतका ने स्वेच्छया यह पर्ची लिखी है कि कोई भी व्यक्ति उसकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी नहीं है और यह कि उसके माता-पिता और परिवार के सदस्यों ने उसके पति को तंग किया है और वह यह कदम इसलिए उठा रही है कि वह अपने जीवन और लड़ाई-झगड़े से ऊब चुकी है ।

8. अपीलार्थी ने, जो कि मृतका का पति है अपने साक्ष्य में प्रतिरक्षा साक्षी 1 के रूप में यह कहा है कि उपर्युक्त पर्ची (प्रदर्श डी-19) स्वयं मृतका द्वारा लिखी गई है और उसी के द्वारा हस्ताक्षरित की गई है और ऊपर उल्लिखित उसके साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि वह मृतका के हस्तलेख और हस्ताक्षर से परिचित था, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय, किसी न किसी प्रकार मृतका के हस्तलेख की तुलना साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 73 के अधीन मृतका के अन्य किसी हस्तलेख और हस्ताक्षरों से कर सकते थे । अनुकल्पतः, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के अधीन विशेषज्ञ की राय ले सकते थे कि हस्तलेख और हस्ताक्षर मृतका के हैं या नहीं । किन्तु दुर्भाग्यवश, न तो विचारण न्यायालय ने और न ही उच्च न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम के इन उपबंधों का अवलंब लिया है और इसके बजाय उन्होंने अपनी काल्पनिक तर्कणा द्वारा अपीलार्थी की इस प्रतिरक्षा को अविश्वसनीय ठहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श डी-19 मृतका द्वारा नहीं लिखी जा सकती थी ।

9. हमारी सुविचारित राय में, प्रतिरक्षा साक्षी 1 (अपीलार्थी) के साक्ष्य और प्रदर्श डी-19 से अभियोजन वृत्तांत युक्तियुक्त रूप से संदिग्ध हो जाता है कि दहेज की मांग को लेकर मृतका को तंग किया गया था या उसके साथ क्रूरता की गई थी । हमारे मतानुसार, सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर था कि वह संदेह के परे दंड संहिता की धारा 498-क के संघटक को साबित करता और धारा 498-क के अधीन अपराध का संघटक यह है कि अभियुक्त ने मृतका के पति के रूप में मृतका के साथ दंड संहिता की धारा 498-क के स्पष्टीकरण में यथापरिभाषित क्रूरता की है । इसी प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के अधीन न्यायालय द्वारा यह उपधारणा करने के लिए कि अपीलार्थी ने दंड संहिता की धारा 304-ख में यथापरिभाषित दहेज मृत्यु कारित की है, अभियोजन पक्ष को, मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग अभियुक्त द्वारा मृतका को तंग किया जाना या उसके साथ क्रूरता किया जाना साबित करना चाहिए था । चूंकि अभियोजन पक्ष ने संदेह के परे तंग किए जाने या क्रूरता किए जाने के संघटक को साबित नहीं किया है, इसलिए दंड संहिता की धारा 498-क और 304-ख के अधीन अपराध नहीं बनता है ।

10. तदनुसार, हम यह अपील मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णयों को अपास्त करते हैं और निदेश देते हैं कि अपीलार्थी द्वारा निष्पादित बंधपत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

[2014] 1 उम. नि. प. 179

जितेन्द्र रघुवंशी और अन्य

बनाम

बबिता रघुवंशी और एक अन्य

15 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति पी. सतशिवम्, न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर और न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 और 320 – अंतर्निहित शक्ति – विवाह-विषयक विवादों से संबंधित अशमनीय अपराध – संबंधित पक्षकारों के बीच परस्पर समझौता हो जाने के आधार पर कार्यवाहियों का अभिखंडित किया जाना – उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करने की दृष्टि से समुचित मामलों में दांडिक कार्यवाहियों या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद को अभिखंडित कर सकता है और संहिता की धारा 320 उच्च न्यायालय की शक्तियों को संहिता की धारा 482 के अधीन सीमित अथवा प्रभावित नहीं करती है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 और 320 – अंतर्निहित शक्ति – विवाह-विषयक विवाद – विवाह के पक्षकारों के बीच समझौता होने पर कार्यवाहियों का अभिखंडित किया जाना – विवाह-विषयक विवादों में न्यायालय का कर्तव्य यथार्थ समझौतों को प्रोत्साहित करना है और विवाह-विषयक विवादों से संबंधित अशमनीय अपराधों में भी न्यायालय यह समाधान हो जाने पर कि पक्षकारों ने अपने विवादों को

सौहार्दपूर्ण रूप से और किसी दबाव के बिना सुलझा लिया है न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उक्त अपराधों की बाबत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या शिकायत या पश्चात्वर्ती दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर सकता है ।

प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी सं. 1 और प्रत्यर्थी-पत्नी का विवाह, हिंदू कृत्य और संस्कार विधि के अनुसार अनुष्ठापित हुआ था । विवाह के पश्चात्, पक्षकार पति-पत्नी के रूप में एक साथ रह रहे थे । कुछ समय पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी की ओर से उसे उसके पति और उसके नातेदारों द्वारा दम्पत्ति गृह में तंग करने और यंत्रणा देने के कारण भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 498-क और धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर की गई थी । अपीलार्थियों के विरुद्ध धारा 498-क और धारा 406 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आपराधिक मामला भी रजिस्टर किया गया था । दांडिक कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों ने परस्पर सहमति से अपने मतभेदों को सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझा लिया था । इसी के अनुसरण में, विचारण न्यायालय के समक्ष आपराधिक मामला तथा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में लंबित दांडिक कार्यवाहियों को बंद करने के लिए एक समझौता आवेदन फाइल किया गया था । प्रत्यर्थी-पत्नी ने भी एक शपथपत्र यह कथन करते हुए फाइल किया था कि वह अपीलार्थियों के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियों को जारी नहीं रखना चाहती है । तथापि, विचारण न्यायाधीश ने उक्त आवेदन को नामंजूर कर दिया था । इससे व्यथित होकर, अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष उसे संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्तियों का अवलंब लेते हुए उनके विरुद्ध शुरू की गई दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए एक आवेदन फाइल किया था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन को यह कथन करते हुए खारिज कर दिया था कि न्यायालय को दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 के अधीन के अपराधों से संबंधित दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है क्योंकि दोनों ही अशमनीय अपराध हैं । उक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थियों ने विशेष इजाजत लेकर वर्तमान अपील फाइल की है । इस अपील में अवधारणार्थ महत्वपूर्ण प्रश्न धारा 482 के अधीन विवाह-विषयक विवादों से संबंधित अशमनीय अपराधों में दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने में

उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों की परिधि और व्याप्ति के बारे में है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि उन्हें विवाह-विषयक विवादों के यथार्थ समझौतों को, विशिष्टतया, तब जब इनमें पर्याप्त वृद्धि हो रही है, प्रोत्साहित करना चाहिए । भले ही अपराध अशमनीय हों, यदि वे विवाह-विषयक विवाद हैं और न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पक्षकारों ने उन विवादों को सौहार्दपूर्ण रूप से और बिना किसी दबाव के सुलझा लिया है, तो हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि न्याय सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए संहिता की धारा 320 प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, शिकायत या पश्चात्वर्ती दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग करने में कोई वर्जना नहीं होगी । (पैरा 12)

हाल ही में विवाह-विषयक विवादों में अपार वृद्धि हुई है । विवाह की संस्था का एक महत्वपूर्ण स्थान है और इसकी समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका है । अतः व्यष्टियों के हित में हर ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए जो उन्हें अपना जीवन व्यवस्थित बनाने और शांतिपूर्ण रहने में समर्थ बना सके । यदि पक्षकार अपनी भूलों पर ध्यान देते हैं और अपने विवाद को न्यायालय में घसीटने के बजाय परस्पर सहमति से सौहार्दपूर्ण रूप से समाप्त कर लेते हैं तो विवाह-विषयक मामलों में पूरा न्याय करने की दृष्टि से न्यायालयों को अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करने में कतई संकोच नहीं करना चाहिए । यह सर्वदा कहा जाता है कि धारा 482 के अधीन शक्ति का प्रयोग बहुत कम किया जाना चाहिए और बहुत ही सावधानीपूर्वक केवल तब जब अभिलेखबद्ध तथ्य सामग्री के आधार पर न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि कार्यवाहियों को जारी रखने से न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और न्याय के हित में यह अपेक्षित हो कि कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया जाना चाहिए । ऐसी शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगा और इसका प्रयोग वास्तविक और सारभूत न्याय करने के लिए, जिसके प्रशासन के लिए ही न्यायालयों का अस्तित्व है, समुचित मामलों में किया जाना चाहिए । (पैरा 13)

उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करने की दृष्टि से समुचित मामलों में दांडिक कार्यवाहियों

या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद को अभिखंडित कर सकता है और संहिता की धारा 320 उच्च न्यायालय की शक्तियों को संहिता की धारा 482 के अधीन सीमित नहीं करती अथवा उन पर प्रभाव नहीं डालती है । (पैरा 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2003]	(2003) 4 एस. सी. सी. 675 : **बी. एस. जोशी और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** ;	9,11
[1999]	(1999) 5 एस. सी. सी. 238 : **सुरेन्द्र नाथ मोहन्ती और एक अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य** ;	9
[1998]	(1998) 5 एस. सी. सी. 749 : **पेप्सी फूड्स लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य** ;	9
[1992]	(1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 335 : **हरियाणा राज्य** बनाम **भजन लाल** ;	9
[1977]	(1977) 4 एस. सी. सी. 551 : **मधुलिमये** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	9

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक अपील सं. 447.

2012 की एम. सी. आर. सी. सं. 2877 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की इंदौर न्यायपीठ के तारीख 4 जुलाई, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री प्रीतका द्विवेदी और श्री अभिषेक चौधरी

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एस. के. दुबे, ज्येष्ठ अधिवक्ता, बी. पी. सिंह, अभिमन्यु सिंह, सुमित गौड़, मोहित के. योगेश तिवारी, सी. डी. सिंह, राहुल और (सुश्री) मुक्ति चौधरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. सतशिवम् ने दिया ।

न्या. सतशिवम् – इजाजत दी जाती है ।

2. इस अपील में जो महत्वपूर्ण प्रश्न अवधारणार्थ उद्भूत हुआ है वह

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "संहिता") की धारा 482 के अधीन विवाह-विषयक विवादों से संबंधित अशमनीय अपराधों में दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने में उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों की परिधि और व्याप्ति के बारे में है ।

3. यह अपील 2012 की एम. सी. आर. सी. सं. 2877 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की इंदौर न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 4 जुलाई, 2012 के उस अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इसमें के अपीलार्थियों द्वारा इंदौर के प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में लंबित 2011 के आपराधिक मामला सं. 4166 में की कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए संहिता की धारा 482 के अधीन फाइल की गई याचिका को खारिज कर दिया गया था ।

4. **संक्षेप में तथ्य :**

(क) जितेन्द्र रघुवंशी (इसमें के अपीलार्थी सं. 1) और बबिता रघुवंशी प्रत्यर्थी-पत्नी का विवाह, हिंदू कृत्य और संस्कार विधि के अनुसार, तारीख 22 फरवरी, 2002 को अनुष्ठापित हुआ था । विवाह के पश्चात्, पक्षकार मध्य प्रदेश के बैतुल जिले में पति-पत्नी के रूप में एक साथ रह रहे थे । तारीख 5 मार्च, 2003 को बबिता रघुवंशी-प्रत्यर्थी-पत्नी की ओर से उसे उसके पति और उसके नातेदारों द्वारा दम्पत्ति गृह में तंग करने और यंत्रणा देने के कारण भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'दंड संहिता') की धारा 34 के साथ पठित धारा 498-क और धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए बैतुल जिले के सरनी पुलिस थाने में 2003 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 172 रजिस्टर की गई थी । इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए 2011 का आपराधिक मामला सं. 4166 भी रजिस्टर किया गया था ।

(ख) दांडिक कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान, वर्ष 2012 में परिवार के सदस्यों, मित्रों और शुभचिंतकों की सहायता और हस्तक्षेप से पक्षकारों ने परस्पर सहमति से अपने मतभेदों को सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझा लिया था । इसी के अनुसरण में, तारीख 3 अप्रैल, 2002 को 2011 के आपराधिक मामला सं. 4166 तथा

तारीख 5 मार्च, 2003 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 172 में विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाहियों को बंद करने के लिए एक समझौता आवेदन फाइल किया गया था । प्रत्यर्थी-पत्नी ने भी एक शपथपत्र यह कथन करते हुए फाइल किया था कि वह अपीलार्थियों के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियों को जारी नहीं रखना चाहती है । तथापि, माननीय विचारण न्यायाधीश ने तारीख 3 अप्रैल, 2012 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को नामंजूर कर दिया था ।

(ग) तारीख 3 अप्रैल, 2012 के आदेश से व्यथित होकर, इसमें के अपीलार्थियों ने तारीख 9 अप्रैल, 2012 के एक आवेदन, 2012 का एम. सी. आर. सी. सं. 2877 उच्च न्यायालय के समक्ष उसे संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्तियों का अवलंब लेते हुए उनके विरुद्ध शुरू की गई दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए फाइल किया था । उच्च न्यायालय ने तारीख 4 जुलाई, 2012 के आक्षेपित आदेश द्वारा इसमें के अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन को यह कथन करते हुए खारिज कर दिया था कि न्यायालय को दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 के अधीन के अपराधों से संबंधित दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है क्योंकि दोनों ही अशमनीय अपराध हैं ।

(घ) उक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थियों ने विशेष इजाजत लेकर वर्तमान अपील फाइल की है ।

5. अपीलार्थियों की विद्वान् काउंसेल सुश्री प्रीतिका द्विवेदी तथा प्रत्यर्थी सं. 2 के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एस. के दुबे और प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राहुल की दलीलों को सुना ।

6. इस न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 482 के अधीन की शक्ति की व्याप्ति और परिधि की अनेक पूर्ववर्ती विनिश्चयों में समीक्षा की जा चुकी है । वर्तमान मामले में, हमारा सरोकार उच्च न्यायालय द्वारा विवाह-विषयक विवादों के संबंध में धारा 482 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करके हस्तक्षेप किए जाने से है ।

7. इस बात का कोई विवाद नहीं है कि विवाह-विषयक विवादों में हाल ही में पर्याप्त वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 के अधीन न केवल पति के विरुद्ध बल्कि पति के नातेदारों के विरुद्ध शिकायतें फाइल की जा रही हैं । प्रश्न यह कि जब

ऐसे मामलों को, पत्नी द्वारा दाम्पत्य गृह में वापस लौटने के लिए सहमत हो जाने के कारण अथवा उन लंबित विवादों को, जिनके लिए दोनों पक्षों की ओर से उच्च न्यायालय में आवेदन किया गया था, सुलझा लिया जाता है और दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 के दांडिक कार्यवाहियों या पत्नी द्वारा की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या शिकायत को अभिखंडित करने के लिए संयुक्त रूप से प्रार्थना की जाती है तो क्या उस प्रार्थना को मात्र इस आधार पर अस्वीकार किया जा सकता है कि चूंकि अपराध संहिता की धारा 320 के अधीन अशमनीय अपराध हैं, अतः न्यायालय के लिए दांडिक कार्यवाहियों या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या शिकायत को अभिखंडित करना अननुज्ञेय होगा ।

8. इस बात का कोई विवाद नहीं है कि विचाराधीन मामले में, दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और धारा 4 के अधीन दांडिक परिवाद फाइल किए जाने के पश्चात्, परिवार के सदस्यों, मित्रों और शुभचिन्तकों की सहायता और हस्तक्षेप से संबंधित पक्षकारों ने अपने मतभेद सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझा लिए हैं और एक समझौता-पत्र निष्पादित किया है । उसके अनुसरण में अपीलार्थियों द्वारा उक्त समझौता-पत्र विचारण न्यायालय के समक्ष इस अनुरोध के साथ फाइल किया गया कि इसे लेखबद्ध किया जाए और इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध की दांडिक कार्यवाहियों को बंद किया जाए । इस बात का भी कोई विवाद नहीं है कि पक्षकारों के बीच परस्पर समझौता होने के अतिरिक्त, प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा भी यह कथन करते हुए एक शपथपत्र फाइल किया गया है कि वह अपीलार्थियों के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियों को आगे नहीं बढ़ाना चाहती है और उसने समझौता विलेख की अंतर्वस्तु का पूरा समर्थन किया है । अपीलार्थियों की शिकायत यह है कि विचारण न्यायालय द्वारा न केवल पक्षकारों की प्रार्थना को नामंजूर किया गया है बल्कि उच्च न्यायालय भी केवल इस आधार पर संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है कि दांडिक कार्यवाहियां दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराधों से संबंधित हैं जो कि अशमनीय प्रकृति के हैं ।

9. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों ने हमारा ध्यान इस न्यायालय द्वारा **बी. एस. जोशी और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय की ओर आकर्षित करते हुए यह निवेदन

---

[1] (2003) 4 एस. सी. सी. 675.

किया है कि ऐसी ही एक परिस्थिति में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उच्च न्यायालय धारा 482 के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन विवाह-विषयक विवादों में की कार्यवाहियों को अभिखंडित कर सकता है जहां कि विवाद पूर्णतया प्राइवेट प्रकृति का हो और पक्षकार अपने विवादों को सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझाना चाहते हों । इस बात का कोई विवाद नहीं है कि **बी. एस. जोशी** (उपर्युक्त) वाले मामले के तथ्य वैसे ही हैं और अपराध की प्रकृति तथा अंतर्वलित विधि का प्रश्न लगभग विचाराधीन मामले के समान है । **हरियाणा राज्य** बनाम **भजन लाल**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि पर विचार करने तथा **मधुलिमये** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2], **सुरेन्द्र नाथ मोहन्ती और एक अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य**[3] और **पेप्सी फूड्स लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य**[4] वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों को स्पष्ट करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "8. .... अतः हमारा यह मत है कि यदि न्याय को सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित किया जाना आवश्यक हो तो धारा 320 अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग करने में कोई वर्जना नहीं होगी । तथापि, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए एक भिन्न मामला हो सकता है कि ऐसी किसी शक्ति का प्रयोग किया जाए अथवा नहीं ।"

इस न्यायालय ने, विवाह-विषयक मामलों पर विचार करते हुए, यह भी अभिनिर्धारित किया है कि :–

> "12. ऐसे विवाह-विषयक मामलों में विशेष लक्षण प्रकट होते हैं । न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह विवाह-विषयक विवादों के यथार्थ समझौतों को प्रोत्साहित करें ।"

10. जैसाकि पहले कथन किया गया है, इस बात का कोई विवाद नहीं है कि दंड संहिता की धारा 498-क और धारा 406 के अधीन दंडनीय

---

[1] (1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 335.
[2] (1977) 4 एस. सी. सी. 551.
[3] (1999) 5 एस. सी. सी. 238.
[4] (1998) 5 एस. सी. सी. 749.

अपराधों के संबंध में कोई परिवाद फाइल करने के पश्चात् वर्तमान मामले में के पक्षकारों ने परस्पर समझौता कर लिया है और परिवादी ने भी अपीलार्थियों के पक्ष का समर्थन करते हुए एक शपथपत्र फाइल किया है । संहिता की धारा 482 के अधीन फाइल की गई याचिका में यह स्थिति विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के समक्ष थी । उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि चूंकि पक्षकारों के बीच हुआ परस्पर समझौता अशमनीय अपराध से संबंधित है, अतः न्यायालय ने इस गलत विनिश्चयाधार पर कार्यवाही की कि इसका शमन नहीं किया जा सकता और धारा 482 के अधीन फाइल की गई याचिका को खारिज कर दिया । उच्च न्यायालय के समक्ष की गई याचिका का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया आवेदन अशमनीय अपराधों का शमन करने के लिए नहीं था बल्कि दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित किए जाने के प्रयोजन के लिए था ।

11. संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां व्यापक और असीमित हैं । **बी. एस. जोशी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय की उन मामलों में, जहां विवाद कोई प्राइवेट प्रकृति का हो और उन पक्षकारों के बीच, जो अपने मतभेदों को सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझाने के इच्छुक हों, समझौता हो गया हो, दांडिक कार्यवाहियों के अभिखंडित करने की शक्तियों को मान्य ठहराया गया है । हमारा यह समाधान हो गया है कि उक्त विनिश्चय प्रत्यक्ष रूप से विचाराधीन मामले के प्रति लागू होता है और उच्च न्यायालय को पक्षकारों के बीच हुए समझौते को स्वीकार करते हुए दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर देना चाहिए था ।

12. हमारे मतानुसार, न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि उन्हें विवाह-विषयक विवादों के यथार्थ समझौतों को, विशिष्टतया, तब जब इनमें पर्याप्त वृद्धि हो रही है, प्रोत्साहित करना चाहिए । भले ही अपराध अशमनीय हों, यदि वे विवाह-विषयक विवाद हैं और न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पक्षकारों ने उन विवादों को सौहार्दपूर्ण रूप से और बिना किसी दबाव के सुलझा लिया है, तो हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि न्याय सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए संहिता की धारा 320, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, शिकायत या पश्चात्वर्ती दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग करने में कोई वर्जना नहीं होगी ।

13. हाल ही में विवाह-विषयक विवादों में अपार वृद्धि हुई है । विवाह की संस्था का एक महत्वपूर्ण स्थान है और इसकी समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका है । अतः व्यष्टियों के हित में हर ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए जो उन्हें अपना जीवन व्यवस्थित बनाने और शांतिपूर्ण रहने में समर्थ बना सके । यदि पक्षकार अपनी भूलों पर ध्यान देते हैं और अपने विवाद को न्यायालय में घसीटने के बजाय परस्पर सहमति से सौहार्दपूर्ण रूप से समाप्त कर लेते हैं तो विवाह-विषयक मामलों में पूरा न्याय करने की दृष्टि से न्यायालयों को अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करने में कतई संकोच नहीं करना चाहिए । यह सर्वदा कहा जाता है कि धारा 482 के अधीन शक्ति का प्रयोग बहुत कम किया जाना चाहिए और बहुत ही सावधानीपूर्वक केवल तब जब अभिलेखबद्ध तथ्य सामग्री के आधार पर न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि कार्यवाहियों को जारी रखने से न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और न्याय के हित में यह अपेक्षित हो कि कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया जाना चाहिए । हम यह भी स्पष्ट कर दें कि ऐसी शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगा और इसका प्रयोग वास्तविक और सारभूत न्याय करने के लिए, जिसके प्रशासन के लिए ही न्यायालयों का अस्तित्व है, समुचित मामलों में किया जाना चाहिए । न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि विवाह-विषयक विवादों के यथार्थ समाधान को प्रोत्साहित किया जाए और संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय को और संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन इस न्यायालय को ऐसे आदेश पारित करने के लिए समर्थ बनाया गया है ।

14. उपर्युक्त विवेचना को ध्यान में रखते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करने की दृष्टि से समुचित मामलों में दांडिक कार्यवाहियों या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद को अभिखंडित कर सकता है और संहिता की धारा 320 उच्च न्यायालय की शक्तियों को संहिता की धारा 482 के अधीन सीमित नहीं करती अथवा उन पर प्रभाव नहीं डालती है । इन परिस्थितियों में, हम उच्च न्यायालय द्वारा 2012 की एम. सी. आर. सी. सं. 2877 में पारित तारीख 4 जुलाई, 2012 के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हैं और इंदौर के प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में लंबित 2011 के दांडिक मामला सं. 4166 में की कार्यवाहियों को अभिखंडित करते हैं ।

15. अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

ज.

[2014] 1 उम. नि. प. 189

माधव और एक अन्य

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य

3 मई, 2013

न्यायमूर्ति पी. सतशिवम् और न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 190(1)(क), 156(3), 200 और 482 – संज्ञेय अपराध के संबंध में परिवाद – मजिस्ट्रेट की शक्तियां – किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित परिवाद में मजिस्ट्रेट या तो संज्ञान करने से पूर्व पुलिस अन्वेषण का निदेश दे सकता है और ऐसा करते समय संबंधित मजिस्ट्रेट को परिवादी की शपथ पर परीक्षा करना आवश्यक नहीं है और उस अन्वेषण की रिपोर्ट के आधार पर कार्यवाही भी कर सकता है या जब वह एक बार संज्ञान ले लेता है और संहिता के अध्याय 15 में सन्निविष्ट प्रक्रिया प्रारंभ कर देता है तो वह संज्ञान-पूर्व प्रक्रम पर वापस जाकर धारा 156(3) का फायदा नहीं ले सकता है ।

महाराष्ट्र सरकार ने एक सरकारी संकल्प द्वारा जनता को व्यापक रूप से यह सूचित किया था कि अनुसूचित जातियों और नव-बौद्धों में शिक्षित बेरोजगारों का प्रतिशत उच्चतर है और जो व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे हैं उन्हें विभिन्न स्कीमों के अधीन काम करना पड़ता है और परिणामस्वरूप इससे उनके जीवन स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है । उक्त कारणों से यह संकल्प पारित किया गया था कि इन लोगों के लिए आय के स्रोत का सृजन करने हेतु उन्हें भूमि उपलब्ध कराई जानी चाहिए । उक्त प्रयोजनार्थ कर्मवीर दादासाहेब गायकवाड़ सबलीकरण और स्वाभिमान योजना समिति के नाम से एक स्कीम तैयार की गई थी । इस स्कीम के अनुसार, प्रत्येक जिले में एक समिति का गठन किया गया था और जिले के कलक्टर को उस समिति के प्रधान के रूप में काम करना था । इस स्कीम के अनुसार सरकार द्वारा भूमि का क्रय किया जाना था और उसे अनुसूचित जातियों और ऐसे नव-बौद्धों को उपलब्ध कराया जाना था जो गरीबी रेखा से नीचे थे । इस मामले में अपीलार्थी सं. 1 ने इस स्कीम के अधीन समिति के सदस्य-सचिव के रूप में कार्य करते हुए यावतमल के जिला कलक्टर के पर्यवेक्षणाधीन अनेक संव्यवहार किए थे । अपीलार्थी सं. 2 उक्त स्कीम में

अपीलार्थी सं. 1 की सहायक के रूप में कार्य कर रही थी । उसे अपीलार्थी सं. 1 द्वारा इस स्कीम के अधीन महाराष्ट्र सरकार के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित कराने के लिए प्राधिकृत किया गया था । राज्य सरकार ने संयुक्त रूप से आठ व्यक्तियों के स्वामित्वाधीन कृषि भूमि क्रय की थी । इसके पश्चात् एक समाचारपत्र में प्रकाशित किया एक लेख में यह अभिकथित किया गया कि याचियों ने ऐसी कृषि भूमि का क्रय किया है जिसमें एक व्यक्ति को जीवित दर्शाया गया है जबकि उसकी मृत्यु हो चुकी थी । इसके अलावा यह अभिकथित किया गया था कि एक व्यक्ति ने उक्त विलेख पर दूसरे नाम से हस्ताक्षर किए थे । उक्त प्रकाशन के बारे में पता चलने पर अपीलार्थी सं. 1 ने पूछताछ की और उक्त आठ निष्पादकों के कथन लेखबद्ध किए और उनके विरुद्ध प्रतिरूपण और छल के अपराध के लिए एक रिपोर्ट दर्ज कराई । उक्त अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कपट, आपराधिक न्यासभंग और प्रतिरूपण के कार्यों के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 420, 419, 468 और 34 के अधीन दंडनीय अपराध रजिस्ट्रीकृत किए गए । एक व्यक्ति ने सामाजिक कार्यकर्ता होने का दावा करते हुए प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्रस्तुत अपीलार्थियों, उप-रजिस्ट्रार और कुछ अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध एक दांडिक परिवाद फाइल किया । परिवाद में यह अभिकथन किया गया था कि अभियुक्तों ने उस भूमि का क्रय एक मृत व्यक्ति से किया था जबकि वे उक्त स्कीम के अधीन अपनी पदीय हैसियत में कार्य कर रहे थे । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने पुलिस को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 156(3) के अधीन मामले का अन्वेषण करने और एक मास के भीतर विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया । अपीलार्थियों ने मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदकों (जो इस मामले में अपीलार्थी हैं) के अभियोजन को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया जो कि 2006 का दांडिक आवेदन सं. 3112 है । उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया दांडिक आवेदन यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण का आदेश करने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा अंगीकृत प्रक्रिया और प्रयोग की गई शक्ति न्यायसंगत और उचित है । प्रस्तुत अपीलार्थियों ने इससे व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर अपील फाइल की । उच्च न्यायालय में अन्य व्यक्तियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन भी खारिज कर दिए गए । उन्होंने भी इससे व्यथित

होकर विशेष इजाजत लेकर अपीलें फाइल की हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा सभी अपीलों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जब मजिस्ट्रेट कोई परिवाद प्राप्त करता है तब वह संज्ञान करने के लिए बाध्य नहीं होता है यदि परिवाद में अभिकथित तथ्य कोई अपराध कारित किया जाना प्रकट करते हैं । मजिस्ट्रेट को इस मामले में विवेकाधिकार प्राप्त होता है । यदि परिवाद का पठन करने पर उसे यह पता चलता है कि उसमें किए गए अभिकथनों से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट होता है और परिवाद को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के लिए पुलिस को अग्रेषित करना न्याय-साधक होगा और इससे मजिस्ट्रेट का बहुमूल्य समय मामले की जांच करने में बर्बाद होने से बचेगा जिसका अन्वेषण करना पुलिस का प्राथमिक कर्तव्य था तो उसके द्वारा स्वयं अपराध का संज्ञान करने के अनुकल्प के रूप में वह मार्ग अपनाना न्यायोचित होगा । संज्ञेय अपराध कारित किए जाने के संबंध में किसी परिवाद की दशा में धारा 156(3) के अधीन शक्ति का अवलंब मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 190(1)(क) के अधीन अपराध का संज्ञान करने से पूर्व लिया जा सकता है । तथापि, यदि वह एक बार ऐसा संज्ञान कर लेता है और अध्याय 15 में सन्निविष्ट प्रक्रिया प्रारंभ कर देता है तो वह संज्ञान-पूर्व प्रक्रम पर वापस जाने और धारा 156(3) का फायदा लेने के लिए सक्षम नहीं है । जहां कोई मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156(3) के अधीन संज्ञान करने से पूर्व पुलिस द्वारा अन्वेषण कराने का आदेश करता है और उसके संबंध में रिपोर्ट प्राप्त करता है वहां वह रिपोर्ट पर कार्यवाही कर सकता है और अभियुक्त को दोषमुक्त कर सकता है या अभियुक्तों के विरुद्ध सीधे ही आदेशिका जारी कर सकता है या उसके समक्ष फाइल किए गए परिवाद पर अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है और संहिता की धारा 190 के अधीन कार्यवाही कर सकता है । (पैरा 13 और 16)

जहां कोई मजिस्ट्रेट संज्ञान करने का विकल्प अपनाता है वहां वह निम्नलिखित अनुकल्पों में कोई भी अनुकल्प अपना सकता है – (क) वह परिवाद का परिशीलन कर सकता है और यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो वह अभियुक्त को सीधे ही आदेशिका जारी कर सकता है किन्तु ऐसा करने से पूर्व उसे धारा 200 की अपेक्षाओं का अनुपालन करना चाहिए और परिवादी या उसके साक्षियों के साक्ष्य लेखबद्ध करने चाहिएं । (ख) मजिस्ट्रेट आदेशिका जारी करना मुल्तवी कर सकता है और स्वयं जांच करने का आदेश कर

सकता है । (ग) मजिस्ट्रेट आदेशिका जारी करना मुल्तवी कर सकता है और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जांच करने या पुलिस द्वारा अन्वेषण करने का निदेश दे सकता है । यदि मजिस्ट्रेट का परिवादी और साक्षियों के कथन पर विचार करने के पश्चात् या आदेशित अन्वेषण और जांच के परिणामस्वरूप यह समाधान नहीं होता है कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो वह परिवाद को खारिज कर सकता है । (पैरा 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 467 : **सी. आर. ई. एफ. फाइनेंस लिमिटेड** बनाम **श्री शांति होम्स (प्रा.) लिमिटेड और एक अन्य** ;	12
[1977]	(1977) 4 एस. सी. सी. 459 : **तुला राम और अन्य** बनाम **किशोर सिंह** ;	17
[1976]	(1976) 3 एस. सी. सी. 252 : **देवरापल्ली लक्ष्मीनारायणा रेड्डी और अन्य** बनाम **वी. नारायणा रेड्डी और अन्य** ।	17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : **2013 की दांडिक अपील सं. 684, 685, 686 और 687.**

2006 के दांडिक आवेदन सं. 3112 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के तारीख 2 सितम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री उदय यू ललित, ज्येष्ठ अधिवक्ता, गौरव अग्रवाल, शंकर नारायणन्, (सुश्री) शर्मिला उपाध्याय और प्रशांत कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री शंकर चिल्लार्ज, अपर महाधिवक्ता, (सुश्री) आशा गोपालन नायर, सुधांशु एस. चौधरी, वात्सल्य वेग और (सुश्री) राजश्री दुबे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. सतशिवम् ने दिया ।

न्या. सतशिवम् – सभी विशेष इजाजत याचिकाओं में इजाजत दी जाती है ।

2013 की दांडिक अपील सं. 684 [2009 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7293 से उद्‌भूत]

2. यह अपील 2006 के दांडिक आवेदन सं. 3112 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 2 सितम्बर, 2009 के अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इस मामले में के अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी थी जबकि 2005 के दांडिक परिवाद मामला सं. 92 में घतंजी के प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय द्वारा पारित तारीख 27 सितम्बर, 2005 के आदेश को अभिपुष्ट कर दिया गया था ।

3. **संक्षिप्त तथ्य :**

(क) महाराष्ट्र सरकार ने तारीख 2 जून, 2004 को एक सरकारी संकल्प प्रकाशित किया था जिसमें जनता को व्यापक रूप से यह सूचित किया गया था कि अनुसूचित जातियों और नव-बौद्धों में शिक्षित बेरोजगारों का प्रतिशत उच्चतर है और जो व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे हैं उन्हें विभिन्न स्कीमों के अधीन काम करना पड़ता है और परिणामस्वरूप इससे उनके जीवन स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है । उक्त कारणों से यह संकल्प पारित किया गया था कि इन लोगों के लिए आय के स्रोत का सृजन करने हेतु उन्हें भूमि उपलब्ध कराई जानी चाहिए । उक्त प्रयोजनार्थ कर्मवीर दादासाहेब गायकवाड़ सबलीकरण और स्वाभिमान योजना समिति के नाम से एक स्कीम तैयार की गई थी । इस स्कीम के अनुसार, प्रत्येक जिले में एक समिति का गठन किया गया था और जिले के कलक्टर को उस समिति के प्रधान के रूप में काम करना था । उक्त स्कीम तारीख 1 अप्रैल, 2004 से लागू कराई गई थी । इस स्कीम के अनुसार सरकार द्वारा भूमि का क्रय किया जाना था और उसे अनुसूचित जातियों और नव-बौद्धमत के उन लोगों को उपलब्ध कराया जाना था जो गरीबी रेखा से नीचे थे ।

(ख) माधव रुकमाजी वैद्य ने, जो कि इस मामले में अपीलार्थी सं. 1 है, विशेष जिला कल्याण अधिकारी और इस स्कीम के अधीन समिति के सदस्य-सचिव के रूप में कार्य करते हुए यावतमल के जिला कलक्टर के पर्यवेक्षणाधीन अनेक संव्यवहार किए थे । सौ. साधना महुकर यवलकर, अपीलार्थी सं. 2, जो कि जिला यावतमल में घतंजी सरकारी होस्टल में

वार्डन थी, उक्त स्कीम में अपीलार्थी सं. 1 की सहायक के रूप में कार्य कर रही थी । उसे अपीलार्थी सं. 1 द्वारा इस स्कीम के अधीन महाराष्ट्र सरकार के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित कराने के लिए प्राधिकृत किया गया था ।

(ग) तारीख 4 अप्रैल, 2005 को राज्य सरकार ने कोली बुजरुक ग्राम में स्थित कृषि भूमि क्रय की । उक्त भूमि संयुक्त रूप से आठ व्यक्तियों के स्वामित्वाधीन थी । अपीलार्थियों ने भूमि के राजस्व अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख निष्पादित कराकर उसे विक्रेताओं से क्रय किया था । तारीख 7 मई, 2005 को विक्रय-विलेख के निष्पादन के समय विक्रेताओं द्वारा एक शपथपत्र दिया गया था कि वे मौज़ा कोली बुज़रुक, तहसील घतंजी, जिला यावतमल के निवासी थे और उक्त संपत्ति के गट सं. 43 के स्वामी थे ।

(घ) तारीख 4 जून, 2005 को "तरुण भारत" नामक एक समाचारपत्र ने एक लेख प्रकाशित किया जिसमें यह अभिकथित किया गया था कि याचियों ने ऐसी कृषि भूमि का क्रय किया है जिसमें रमेश को जीवित दर्शाया गया है जबकि उसकी मृत्यु हो चुकी थी । इसके अलावा यह अभिकथित किया गया था कि रमेश शिकाजी राठौड़ नामक एक व्यक्ति ने उक्त विलेख पर रमेश शिखा जाधव के रूप में हस्ताक्षर किए थे ।

(ङ) उक्त प्रकाशन के बारे में पता चलने पर अपीलार्थी सं. 1 ने तारीख 29 जून, 2005 को पूछताछ की और उक्त आठ निष्पादकों के कथन लेखबद्ध किए और तारीख 2 जुलाई, 2005 को उनके विरुद्ध प्रतिरूपण और छल के अपराध के लिए घतंजी पुलिस थाने में एक रिपोर्ट दर्ज कराई ।

(च) तारीख 7 जुलाई, 2005 को घतंजी पुलिस थाने के पदाधिकारियों ने 2005 के अपराध सं. 88 द्वारा उक्त अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कपट, आपराधिक न्यासभंग और प्रतिरूपण के कार्यों के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 420, 419, 468 और 34 के अधीन दंडनीय अपराध रजिस्ट्रीकृत किए ।

(छ) तारीख 9 सितम्बर, 2005 को रजनीकांत डेलुराम बोरेले ने एक सामाजिक कार्यकर्ता होने का दावा करते हुए घतंजी के प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्रस्तुत अपीलार्थियों, उप-रजिस्ट्रार और कुछ अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध एक दांडिक परिवाद फाइल किया जो कि

2005 के मामला सं. 92 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । परिवाद में यह अभिकथन किया गया था कि अभियुक्तों ने उस भूमि का क्रय एक मृत व्यक्ति, अर्थात्, रमेश शिकाजी जाधव से किया था जबकि अपीलार्थी उक्त स्कीम के अधीन अपनी पदीय हैसियत में कार्य कर रहे थे ।

(ज) विद्वान् मजिस्ट्रेट ने तारीख 27 सितम्बर, 2005 के आदेश द्वारा पुलिस को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 156(3) के अधीन मामले का अन्वेषण करने और एक मास के भीतर विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया ।

(झ) तारीख 15 सितम्बर, 2006 को अपीलार्थियों (माधव रुकमाजी वैद्य और सौ. साधना महुकर यवलकर) ने मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष 2005 के अपराध सं. 92 में आवेदकों (जो इस मामले में अपीलार्थी हैं) के अभियोजन को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया जो कि 2006 का दांडिक आवेदन सं. 3112 है ।

(ञ) तारीख 2 सितम्बर, 2009 को उच्च न्यायालय ने पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् प्रस्तुत अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया दांडिक आवेदन यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण का आदेश करने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा अंगीकृत प्रक्रिया और प्रयोग की गई शक्ति न्यायसंगत और उचित है ।

(ट) प्रस्तुत अपीलार्थियों ने इससे व्यथित होकर 2009 की विशेष इजाजत याचिका सं. 7293 फाइल की ।

2012 की दांडिक अपील सं. 685 [2009 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7324 से उद्भूत]

4. तारीख 27 सितम्बर, 2006 को अभियुक्तों में से एक, अर्थात् आकाश दत्तात्रेय मारवाड़ (अभियुक्त सं. 1) ने भी, जो कि एक व्यवसायी है, 2005 के अपराध सं. 92 में अभियोजन को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष 2006 का दांडिक आवेदन सं. 3242 फाइल किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 2 सितम्बर, 2009 के आदेश द्वारा वह आवेदन खारिज कर दिया । इससे व्यथित होकर उसने 2009 की विशेष इजाजत याचिका सं. 7324 फाइल की ।

2013 की दांडिक अपील सं. 686 [2009 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7332 से उद्‌भूत]

5. तारीख 24 अक्तूबर, 2006 को एक अन्य अभियुक्त, अर्थात् ओम प्रकाश हीरालाल जायसवाल, उप-रजिस्ट्रार ने भी 2005 के अपराध सं. 92 में अभियोजन को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष 2006 का दांडिक आवेदन सं. 3526 फाइल किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 2 सितम्बर, 2009 के आदेश द्वारा वह आवेदन खारिज कर दिया । इससे व्यथित होकर उसने 2009 की विशेष इजाजत याचिका सं. 7332 फाइल की ।

2013 की दांडिक अपील सं. 687 [2009 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7693 से उद्‌भूत]

6. तारीख 29 अक्तूबर, 2006 को अभियुक्तों में से एक, अर्थात् असलम शकील ज़ुल्फिकार खान ने भी, जो कि आकाश दत्तात्रेय मारवाड़ (अभियुक्त सं. 1), एक व्यवसायी का कर्मचारी है, 2005 के अपराध सं. 92 में अभियोजन को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष 2006 का दांडिक आवेदन सं. 3240 फाइल किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 2 सितम्बर, 2009 के आदेश द्वारा वह आवेदन खारिज कर दिया । इससे व्यथित होकर उसने 2009 की विशेष इजाजत याचिका सं. 7693 फाइल की ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री उदय यू ललित और प्रत्यर्थी-महाराष्ट्र राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री शंकर चिल्लार्ज को सुना ।

8. इन सभी अपीलों में विचारार्थ एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता की धारा 156(3) के अधीन पुलिस को अन्वेषण करने और एक मास के भीतर विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश देना न्यायोचित है ।

9. विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश से यह दर्शित होता है कि धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के लिए निदेश पारित करने से पूर्व उसने परिवादी के काउन्सेल की सुनवाई की थी, परिवाद और उससे उपाबद्ध दस्तावेज़ों में अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों का परिशीलन किया था । इससे यह भी दर्शित होता है कि उसने इस तथ्य को ध्यान में

रखते हुए कि कुछ अभियुक्त लोक अधिकारी हैं और यह अवलोकन करने के पश्चात् कि संहिता की धारा 156(3) के अधीन अभियुक्तों के विरुद्ध आदेशिका जारी करने के पूर्व उचित अन्वेषण कराना आवश्यक है, घतंजी पुलिस थाने के भारसाधक को मामले का अन्वेषण करने और एक मास के भीतर विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया था ।

10. संहिता के अध्याय 14 में कार्यवाहियां शुरू करने के लिए अपेक्षित शर्तों का उल्लेख किया गया है । धारा 190 मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों का संज्ञान करने के संबंध में है । उपधारा (1) के निबंधनानुसार, उक्त अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए कोई प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन विशेषतया सशक्त किया गया कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित दशाओं में कर सकता है – (क) उन तथ्यों का, जिनसे ऐसा अपराध बनता है, परिवाद प्राप्त होने पर ; (ख) ऐसे तथ्यों के बारे में पुलिस रिपोर्ट पर ; (ग) पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त इस इत्तिला पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है ।

11. संहिता की धारा 156 की उपधारा (3) धारा 190 के अधीन सशक्त किए गए किसी मजिस्ट्रेट को उस धारा की उपधारा (1) के निबंधनानुसार किसी अन्वेषण का आदेश करने के लिए समर्थ बनाती है ।

12. **सी. आर. ई. एफ. फाइनेंस लिमिटेड** बनाम **श्री शांति होम्स (प्रा.) लिमिटेड और एक अन्य**[1] वाले मामले में अपराध का संज्ञान करने संबंधी मजिस्ट्रेट की शक्ति पर विचार करते समय इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया था :–

> "10. संज्ञान आरंभिक प्रक्रम पर तब लिया जाता है जब मजिस्ट्रेट यह अभिनिश्चित करने के लिए परिवाद का परिशीलन करता है कि क्या कोई अपराध कारित किया जाना प्रकट होता है । आदेशिका पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर जारी की जाती है जब न्यायालय अपने समक्ष रखी गई सामग्री पर विचार करने के पश्चात् उन अपराधियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का विनिश्चय करता है जिनके विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है । यह संभव है कि कोई परिवाद अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध फाइल किया जा सकता है किन्तु

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 467.

> मजिस्ट्रेट उनमें से कुछ अभियुक्तों के विरुद्ध ही आदेशिका जारी करने का विकल्प अपना सकता है । यह भी हो सकता है कि न्यायालय संज्ञान करने और परिवादी की शपथ पर परीक्षा करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि आदेशिका जारी करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है और वह परिवाद खारिज कर सकता है । यह भी हो सकता है कि न्यायालय परिवाद पर विचार करने के पश्चात् परिवाद को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के लिए पुलिस के पास भेजना उपयुक्त समझ सकता है ।"

यह स्पष्ट होता है कि कोई न्यायिक मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करने से पूर्व संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण का आदेश कर सकता है । यदि वह ऐसा करता है तो उसे परिवादी की शपथ पर परीक्षा नहीं करनी होती है क्योंकि वह उसमें किसी अपराध का संज्ञान नहीं ले रहा था ।

13. जब मजिस्ट्रेट कोई परिवाद प्राप्त करता है तब वह संज्ञान करने के लिए बाध्य नहीं होता है यदि परिवाद में अभिकथित तथ्य कोई अपराध कारित किया जाना प्रकट करते हैं । मजिस्ट्रेट को इस मामले में विवेकाधिकार प्राप्त होता है । यदि परिवाद का पठन करने पर उसे यह पता चलता है कि उसमें किए गए अभिकथनों से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट होता है और परिवाद को धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के लिए पुलिस को अग्रेषित करना न्याय-साधक होगा और इससे मजिस्ट्रेट का बहुमूल्य समय मामले की जांच करने में बर्बाद होने से बचेगा जिसका अन्वेषण करना पुलिस का प्राथमिक कर्तव्य था तो उसके द्वारा स्वयं अपराध का संज्ञान करने के अनुकल्प के रूप में वह मार्ग अपनाना न्यायोचित होगा । जैसा कि इससे पूर्व कहा गया है, संज्ञेय अपराध कारित किए जाने के संबंध में किसी परिवाद की दशा में धारा 156(3) के अधीन शक्ति का अवलंब मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 190(1)(क) के अधीन अपराध का संज्ञान करने से पूर्व लिया जा सकता है । तथापि, यदि वह एक बार ऐसा संज्ञान कर लेता है और अध्याय 15 में सन्निविष्ट प्रक्रिया प्रारंभ कर देता है तो वह संज्ञान-पूर्व प्रक्रम पर वापस जाने और धारा 156(3) का फायदा लेने के लिए सक्षम नहीं है ।

14. जहां कोई मजिस्ट्रेट संज्ञान करने का विकल्प अपनाता है वहां

वह निम्नलिखित अनुकल्पों में कोई भी अनुकल्प अपना सकता है :–

(क) वह परिवाद का परिशीलन कर सकता है और यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो वह अभियुक्त को सीधे ही आदेशिका जारी कर सकता है किन्तु ऐसा करने से पूर्व उसे धारा 200 की अपेक्षाओं का अनुपालन करना चाहिए और परिवादी या उसके साक्षियों के साक्ष्य लेखबद्ध करने चाहिएं ।

(ख) मजिस्ट्रेट आदेशिका जारी करना मुल्तवी कर सकता है और स्वयं जांच करने का आदेश कर सकता है ।

(ग) मजिस्ट्रेट आदेशिका जारी करना मुल्तवी कर सकता है और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जांच करने या पुलिस द्वारा अन्वेषण करने का निदेश दे सकता है ।

15. यदि मजिस्ट्रेट का परिवादी और साक्षियों के कथन पर विचार करने के पश्चात् या आदेशित अन्वेषण और जांच के परिणामस्वरूप यह समाधान नहीं होता है कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो वह परिवाद को खारिज कर सकता है ।

16. जहां कोई मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156(3) के अधीन संज्ञान करने से पूर्व पुलिस द्वारा अन्वेषण कराने का आदेश करता है और उसके संबंध में रिपोर्ट प्राप्त करता है वहां वह रिपोर्ट पर कार्यवाही कर सकता है और अभियुक्त को दोषमुक्त कर सकता है या अभियुक्तों के विरुद्ध सीधे ही आदेशिका जारी कर सकता है या उसके समक्ष फाइल किए गए परिवाद पर अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है और संहिता की धारा 190 के अधीन कार्यवाही कर सकता है ।

17. उपर्युक्त सिद्धांत **देवरापल्ली लक्ष्मीनारायणा रेड्डी और अन्य** बनाम **वी. नारायणा रेड्डी और अन्य**[1] और **तुला राम और अन्य** बनाम **किशोर सिंह**[2] वाले मामलों में दोहराए गए हैं ।

18. यदि हम उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए उसकी परीक्षा मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के लिए जारी

---

[1] (1976) 3 एस. सी. सी. 252.
[2] (1977) 4 एस. सी. सी. 459.

किए गए निदेश और इन मामलों के तथ्यों से करें तो हमारा यह समाधान हो गया है कि मजिस्ट्रेट ने अपनी शक्ति से परे कार्य नहीं किया है और न ही उसने संहिता में अंतर्विष्ट किसी उपबंध का अतिक्रमण किया है । जैसा कि इससे पूर्व मत व्यक्त किया गया है, मजिस्ट्रेट को तब किसी अन्वेषण का आदेश करने की आवश्यकता नहीं है यदि वह अपराध का संज्ञान करने की पूर्वकल्पना करता है और एक बार जब वह अपराध का संज्ञान कर लेता है तो उसे संहिता के अध्याय 15 में उपबंधित प्रक्रिया का अनुसरण करना होता है । यह भी स्थापित स्थिति है कि कोई न्यायिक मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करने से पूर्व संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण का आदेश कर सकता है ।

19. जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा सही मत व्यक्त किया गया है, मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करने से पूर्व संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण का आदेश कर सकता है, हमारा यह मत है कि इस मामले में मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और प्रयोग की गई शक्ति स्वीकार्य है और संहिता की स्कीम के अनुसार है । हमारा इस संबंध में भी समाधान हो गया है कि उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करके सही किया है ।

20. उपर्युक्त विचार-विमर्श और निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए हमें इन अपीलों में कोई सार प्रतीत नहीं होता है, परिणामस्वरूप वे खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

ग्रो.

[2014] 1 उम. नि. प. 201

धर्म पाल और अन्य

बनाम

हरियाणा राज्य और एक अन्य

18 जुलाई, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर, न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर, न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल और न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 190 और धारा 173 – अपराध का संज्ञान – मजिस्ट्रेट की भूमिका – यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से सहमत नहीं है और उसे यह विश्वास हो जाता है कि पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में रखे गए व्यक्तियों के विरुद्ध भी विचारण बनता है तो उसे मुख्य अभियुक्त के साथ-साथ उनके विरुद्ध भी विचारण करने के लिए समन जारी करने की अधिकारिता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 209 और धारा 193 – अपराध का संज्ञान – सेशन न्यायालय को मामले की सुपुर्दगी – यदि मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान करता है और उसके बाद मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करता है तो उस अपराध का नए सिरे से संज्ञान करना और उसके पश्चात् समन जारी करना विधि के अनुसार नहीं होगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 193 और धारा 319 – सेशन न्यायालय की अतिरिक्त व्यक्तियों को समन करने की शक्ति – सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द किए जाने पर उन व्यक्तियों के अपराधों का संज्ञान करने की भी अधिकारिता है जिन्हें अपराधियों के रूप में नामित तो नहीं किया गया है किन्तु जिनकी सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रकट होती है ।

प्रस्तुत मामले में नफे सिंह नामक व्यक्ति के सिवाय, जिसे अभियुक्त के रूप में दर्शाया गया था, अपीलार्थी धर्म पाल और अन्य व्यक्तियों को इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्तों के रूप में नामित किया गया था पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में शामिल किया गया था । पुलिस रिपोर्ट का परिशीलन करने के पश्चात्, विद्वान् प्रथम श्रेणी

न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थी और तीन अन्य व्यक्तियों को, जिन्हें आरोप पत्र में अभियुक्तों के रूप में शामिल नहीं किया गया था, नफे सिंह के साथ विचारण का सामना करने के प्रयोजनार्थ समन किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने संहिता की धारा 204 के अधीन समन जारी करने की कार्यवाही करने से पूर्व तात्पर्यित रूप से संहिता की धारा 190 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए किन्तु संहिता की धारा 200 और 202 में उपदर्शित अन्य उपबंधों का अवलंब लिए बिना कार्यवाही की थी । विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश को दांडिक पुनरीक्षण में अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण के रूप में प्रश्नगत किया गया था जिसने विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश को कायम रखा और पुनरीक्षण खारिज कर दिया । इसके पश्चात्, विद्वान् सेशन न्यायाधीश के आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और उसने भी विद्वान् मजिस्ट्रेट तथा सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिव्यक्त मतों को कायम रखा और अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित उस आदेश को अभिखंडित करने के लिए संहिता की धारा 482 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन को खारिज कर दिया था जिसके द्वारा प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के उस आदेश को अभिपुष्ट किया गया था जो कि अपीलार्थियों को पुलिस थाने में दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 और 323 के अधीन रजिस्ट्रीकृत तारीख 13 अक्तूबर, 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 272 के संबंध में समन करने के लिए संहिता की धारा 190 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में पारित किया गया था । प्रारंभ में, इस मामले की सुनवाई किशोरी सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, राजेन्द्र प्रसाद बनाम बशीर और अन्य तथा स्विल लिमिटेड बनाम दिल्ली राज्य और अन्य वाले मामलों में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चयों में मतभेद होने के कारण तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा कराने का निदेश दिया गया था । जब तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस मामले पर विचार करना आरंभ किया तब न्यायालय की जानकारी में यह बात लाई गई थी कि इसमें जिस प्रश्न का अवधारण किया जाना ईप्सित है उसका सीधा संबंध दो अन्य विनिश्चयों से था । प्रथम विनिश्चय किशन सिंह बनाम बिहार राज्य वाले मामले में था और दूसरा विनिश्चय रंजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय था । रंजीत सिंह वाले विनिश्चय में किशन सिंह वाले विनिश्चय में की गई मताभिव्यक्तियों को अस्वीकार कर दिया गया था जो कि इस आशय की थी कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 193 के अधीन

सेशन न्यायालय को किसी मामले का संज्ञान करने और ऐसे अन्य व्यक्तियों को समन करने की शक्ति है जिसकी अपराध कारित करने में सह-अपराधिता का निष्कर्ष प्रथमदृष्ट्या अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से निकाला जा सकता है । किशन सिंह वाले मामले में के विनिश्चय के अनुसार सेशन न्यायालय को संहिता की धारा 193 के अधीन ऐसी शक्ति प्राप्त है । दूसरी ओर, रंजीत सिंह वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सुपुर्दगी के प्रक्रम से सेशन न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 230 में उपदर्शित प्रक्रम पर पहुंचने तक वह न्यायालय संहिता की धारा 209 में निर्दिष्ट अभियुक्तों के संबंध में ही कार्यवाही कर सकेगा और तब तक ऐसा कोई मध्यवर्ती प्रक्रम नहीं है जो सेशन न्यायालय को अभियुक्तों की सूची में किसी अन्य व्यक्ति को शामिल करने के लिए समर्थ बनाता हो । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि ऐसे निष्कर्ष का प्रभाव यह है कि आरोप पत्र के स्तम्भ 2 में नामित और विचारण के लिए प्रस्तुत न किए गए अभियुक्त के विरुद्ध सेशन न्यायाधीश द्वारा संहिता की धारा 228 के साथ पठित धारा 193 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण नहीं किया जा सकेगा । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ रंजीत सिंह वाले मामले में अभिव्यक्त मतों से असहमत थी किन्तु चूंकि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने रंजीत सिंह वाले मामले में अभिव्यक्त मत से प्रतिकूल मत अपनाया था इसलिए इस मामले की सुनवाई करने वाली तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह निदेश दिया कि यह मामला किसी बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष रखने के लिए इसे मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाए । उपर्युक्त कारणों से मामला संविधान पीठ के समक्ष विचारार्थ रखा गया है । वे प्रश्न, जिन पर संविधान पीठ द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है, ये हैं – (i) क्या सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करने के पश्चात् कोई अन्य भूमिका निभानी होती है ? (ii) यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत है और उसे यह विश्वास हो जाता है कि उन व्यक्तियों के विरुद्ध भी मामला बनता था जिन्हें रिपोर्ट के स्तंभ 2 में रखा गया था, तो क्या उसे पुलिस रिपोर्ट में बनाए गए मामले के संबंध में विचारण में पेश होने के लिए नफे सिंह के साथ-साथ उनके नाम शामिल करने की दृष्टि से उनके विरुद्ध भी समन जारी करने की अधिकारिता है ? (iii) क्या अपीलार्थियों के विरुद्ध समन जारी करने का विनिश्चय करने पर मजिस्ट्रेट से परिवाद मामले की प्रक्रिया का अनुसरण करना और उन्हें

विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने से पूर्व साक्ष्य लेना अपेक्षित है या क्या उसका ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना उन्हें समन जारी करना न्यायोचित था ? (iv) क्या सेशन न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के अधीन मूल अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में समन जारी कर सकता है ? (v) क्या मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिए जाने पर सेशन न्यायाधीश संहिता की धारा 193 के अधीन पृथक् रूप से समन जारी कर सकेगा या क्या उसे उसका अवलंब लेने के लिए तब तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक मामला संहिता की धारा 319 के अधीन वाले प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता ? (vi) क्या रंजीत सिंह वाले मामले का विनिश्चय, जिसके द्वारा किशन सिंह वाले विनिश्चय को अपास्त कर दिया गया था, सही विनिश्चित किया गया था अथवा नहीं ? उच्चतम न्यायालय द्वारा तदनुसार आदेश करते हुए,

अभिनिर्धारित – मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(3) के अधीन उसके समक्ष प्रस्तुत की गई पुलिस रिपोर्ट का संज्ञान लेने पर सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते समय भूमिका निभानी होती है । यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत होता है तो उसके पास दो विकल्प हैं । वह उस अभ्यापत्ति याचिका के आधार पर जो फाइल की जा सकती है, कार्यवाही कर सकता है या वह पुलिस रिपोर्ट से असहमति दिखाते हुए आदेशिका जारी कर सकता है और अभियुक्तों को समन कर सकता है । इसके पश्चात्, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए मामला बनता था तो उक्त व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण करने की कार्यवाही कर सकेगा या यदि उसका यह समाधान हो गया था कि ऐसा मामला साबित हो गया था जो कि सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था तो वह मामले पर आगे कार्यवाही करने के लिए उसे सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर सकेगा । (पैरा 24)

मजिस्ट्रेट द्वारा कौन सी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना है यदि उसका यह समाधान हो गया था कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत की गई अंतिम रिपोर्ट के बावजूद विचारण करने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला साबित हो गया था । ऐसी दशा में, यदि मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का विनिश्चय किया था तो उसे पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही कार्यवाही करनी होगी और या तो मामले की जांच करनी होगी या यदि वह सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय पाया गया था उसे सेशन

न्यायालय को सुपुर्द करना होगा । (पैरा 25)

इन दलीलों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, जिससे यह दर्शित होता था कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मजिस्ट्रेट को मामला सेशन न्यायालय के विचारण के लिए सुपुर्द करने के सिवाय कोई अन्य कृत्य नहीं करना था और सेशन न्यायालय ही विचारण में किसी अन्य व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में शामिल करने के लिए संहिता की धारा 319 का अवलंब ले सकता था । ऐसे निर्वचन के प्रभाव के परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जहां पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों पर न तो सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट का और न ही सेशन न्यायालय का कोई नियंत्रण होगा जब तक विचारण धारा 319 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता । इसके अलावा, यदि सेशन न्यायाधीश अंततोगत्वा पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध सामग्री पाता है तो ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण नए सिरे से आरंभ किया जाना होगा जिसके परिणामस्वरूप न केवल विचारण दोहराया जाएगा बल्कि उसमें देरी भी होगी । (पैरा 22)

कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है । उक्त उपबंध में यह आदिष्ट है कि प्रथमतः मामला मजिस्ट्रेट द्वारा सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाना चाहिए । दूसरी शर्त यह है कि मामला उसे सुपुर्द किए जाने के पश्चात् ही सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपराध का संज्ञान कर सकता है । यद्यपि यह बताने का प्रयास किया गया है कि धारा 193 में उपदर्शित संज्ञान किसी अपराध के संज्ञान के संबंध में नहीं है बल्कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित सुपुर्दगी आदेश के संबंध में है, तथापि, धारा 193 के इन स्पष्ट शब्दों को ध्यान में रखते हुए कि सेशन न्यायालय उक्त धारा के अधीन अपराधों का संज्ञान कर सकता है हम इस दलील को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है । (पैरा 26)

यह सुस्थापित है कि किसी अपराध का संज्ञान केवल एक बार किया जा सकता है । यदि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करता है और इसके बाद मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द करता है तो अपराध का नए सिरे से संज्ञान करने और इसके पश्चात् समन जारी करने की कार्यवाही करने का

प्रश्न विधि के अनुसार नहीं है । यदि अपराध का संज्ञान किया जाना है तो वह या तो मजिस्ट्रेट द्वारा या सेशन न्यायालय द्वारा किया जा सकेगा । संहिता की धारा 193 में अत्यंत स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया गया है कि जब विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया जाता है तब सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता ग्रहण कर लेता है और सब कुछ उस अधिकारिता के ग्रहण करने के बाद होता है । अतः, धारा 209 के उपबंधों का पठन इस रूप में करना होगा कि विद्वान् मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने की निष्क्रिय भूमिका निभाता है । मजिस्ट्रेट द्वारा अंशतः संज्ञान करने और अंशतः विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा संज्ञान करने का कोई प्रश्न नहीं हो सकता है । (पैरा 27)

सेशन न्यायालयों को उसे मामला सुपुर्द करने पर उन व्यक्तियों के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान करने की अधिकारिता होती है जिन्हें अपराधियों के रूप में नामित नहीं किया गया है किन्तु जिनकी मामले में सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रकट होगी । अतः, सेशन न्यायाधीश धारा 209 के अधीन सुपुर्दगी पर साक्ष्य लेखबद्ध किए बिना भी पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों को उन व्यक्तियों के साथ, जिन्हें पहले ही नामित किया गया है, विचारण में प्रस्तुत होने के लिए समन कर सकेगा । (पैरा 28)

इस दलील को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि सेशन न्यायालय के पास उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने से पूर्व जिनके विरुद्ध विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करते समय भेजे गए मामले के कागजपत्रों में अंतर्विष्ट सामग्री से प्रथमदृष्ट्या मामला साबित होता है, उस समय तक प्रतीक्षा करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होगा जब तक मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता है । (पैरा 29)

अनुसृत निर्णय

		पैरा
[1993]	(1993) 2 एस. सी. सी. 16 : **किशन सिंह** बनाम **बिहार राज्य** ।	1,4,8,16,23, 28,30,31

उलटा गया निर्णय

[1998]	(1998) 7 एस. सी. सी. 149 : **रंजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ।	1,2,4,8, 17,30,31

निर्दिष्ट निर्णय

[2004]	(2004) 13 एस. सी. सी. 11 : **किशोरी सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ;	1,17
[2001]	(2001) 8 एस. सी. सी. 522 : **राजेन्द्र प्रसाद** बनाम **बशीर और अन्य** ;	1
[2001]	(2001) 6 एस. सी. सी. 670 : **स्विल लिमिटेड** बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य** ;	1,15
[1997]	(1997) 2 एस. सी. सी. 397 : **रश्मि कुमार** बनाम **महेश कुमार भादा** ;	13
[1996]	(1996) 4 एस. सी. सी. 495 : **राज किशोर प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य** ;	15
[1989]	(1989) 2 एस. सी. सी. 132 : **इंडियन कैरेट प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** ;	14
[1967]	[1967] 3 एस. सी. आर. 668 : **अभिनंदन झा** बनाम **दिनेश मिश्रा** ।	14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2003 की दांडिक अपील सं. 148 और 2004 की दांडिक अपील सं. 865, 2005 की दांडिक अपील सं. 1334 तथा 2006 की दांडिक अपील सं. 537.

2002 के दांडिक प्रकीर्ण सं. 21505-एम में चंडीगढ़ स्थित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 27 मई, 2002 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री बृजेन्द्र चाहर, ज्येष्ठ अधिवक्ता, राजीव गौड़ 'नसीम', अपर महाधिवक्ता, (श्रीमती) ज्योति चाहर, विनय गर्ग, मनु

शंकर मिश्रा, नवीन कुमार, आलोक कुमार, सिद्धार्थ दवे, (सुश्री) जयन्तीबेन, ए. ओ., (सुश्री) विभा दत्ता मखीजा, कमल मोहन गुप्ता, गोपाल सिंह, मनीष कुमार, चन्दन कुमार, जे. पी. ढांढा, शिशिर पिनाकी, रवि चन्द्र प्रकाश, मुकेश कुमार सिंह, पुरुषोत्तम त्रिपाठी, (सुश्री) फिज़ा मुनीष, अमित कुमार, के. के. त्यागी, इमरान आलम, इफ्तिख्यार अहमद, पी. नरसिंह्न, राहुल शुक्ला, (सुश्री) बचिता बी. शुक्ला और डा. कैलाश चन्द

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर ने दिया ।

मु. न्या. कबीर – प्रारंभ में, इस मामले की सुनवाई **किशोरी सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1], **राजेन्द्र प्रसाद** बनाम **बशीर और अन्य**[2] तथा **स्विल लिमिटेड** बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य**[3] वाले मामलों में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चयों में मतभेद होने के कारण तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा कराने का निदेश दिया गया था । जब तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 1 सितम्बर, 2004 को इस मामले पर विचार करना आरंभ किया तो न्यायालय की जानकारी में यह बात लाई गई थी कि इसमें जिस प्रश्न का अवधारण किया जाना ईप्सित है उसका सीधा संबंध दो अन्य विनिश्चयों से था । प्रथम विनिश्चय **किशन सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[4] वाले मामले में था और दूसरा विनिश्चय **रंजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[5] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय था । **रंजीत सिंह** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय में **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय में की गई मताभिव्यक्तियों को अस्वीकार कर दिया गया था जो कि इस आशय की थी कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा

---

[1] (2004) 13 एस. सी. सी. 11.

[2] (2001) 8 एस. सी. सी. 522.

[3] (2001) 6 एस. सी. सी. 670.

[4] (1993) 2 एस. सी. सी. 16.

[5] (1998) 7 एस. सी. सी. 149.

193 के अधीन सेशन न्यायालय को किसी मामले का संज्ञान करने और ऐसे अन्य व्यक्तियों को समन करने की शक्ति है जिसकी अपराध कारित करने में सह-अपराधिता का निष्कर्ष प्रथमदृष्ट्या अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से निकाला जा सकता है । **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के अनुसार सेशन न्यायालय को संहिता की धारा 193 के अधीन ऐसी शक्ति प्राप्त है । दूसरी ओर, **रंजीत सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सुपुर्दगी के प्रक्रम से सेशन न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 230 में उपदर्शित प्रक्रम पर पहुंचने तक वह न्यायालय संहिता की धारा 209 में निर्दिष्ट अभियुक्तों के संबंध में ही कार्यवाही कर सकेगा और तब तक ऐसा कोई मध्यवर्ती प्रक्रम नहीं है जो सेशन न्यायालय को अभियुक्तों की सूची में किसी अन्य व्यक्ति को शामिल करने के लिए समर्थ बनाता हो ।

2. तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि ऐसे निष्कर्ष का प्रभाव यह है कि आरोप पत्र के स्तम्भ 2 में नामित और विचारण के लिए प्रस्तुत न किए गए अभियुक्त के विरुद्ध सेशन न्यायाधीश द्वारा संहिता की धारा 228 के साथ पठित धारा 193 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण नहीं किया जा सकेगा । दूसरे शब्दों में, भले ही जब सेशन न्यायालय ने आरोप विरचित करते समय अपने विवेक का प्रयोग किया था और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि वास्तव में स्तंभ 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों के विरुद्ध भी अपराध बनता है, तब भी उसे उनके विरुद्ध कार्यवाही करने की कोई शक्ति नहीं है और ऐसे व्यक्तियों को विचारण में अभियुक्तों के रूप में सम्मिलित करने के लिए तब तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक मामला संहिता की धारा 319 के अधीन प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता है यदि पेश किए गए साक्ष्य से उनकी सह-अपराधिता भी साबित हो गई थी । जैसा कि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उल्लेख किया है, इसका अगला प्रभाव यह था कि मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय कम गंभीर अपराधों में यदि वह पुलिस रिपोर्ट से असहमत होता है तो उसे उन अभियुक्तों के विरुद्ध जो स्तंभ 2 में उल्लिखित हैं, कार्यवाही करने की शक्ति होगी किन्तु सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय गंभीर अपराधों के संबंध में न्यायालय को संहिता की धारा 319 के प्रक्रम पर पहुंचने तक प्रतीक्षा करनी होगी । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ **रंजीत सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मतों से असहमत थी किन्तु चूंकि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **रंजीत सिंह**

(उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत से प्रतिकूल मत अपनाया था इसलिए इस मामले की सुनवाई करने वाली तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 20 जनवरी, 2005 के अपने आदेश द्वारा यह निदेश दिया कि यह मामला किसी बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष रखने के लिए इसे मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाए ।

3. उपर्युक्त कारणों से मामला संविधान पीठ के समक्ष विचारार्थ रखा गया है ।

4. वे प्रश्न, जिन पर संविधान पीठ द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है, निम्नलिखित रूप में हैं :–

(i) क्या सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करने के पश्चात् कोई अन्य भूमिका निभानी होती है ?

(ii) यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत है और उसे यह विश्वास हो जाता है कि उन व्यक्तियों के विरुद्ध भी मामला बनता था जिन्हें रिपोर्ट के स्तंभ 2 में रखा गया था, तो क्या उसे पुलिस रिपोर्ट में बनाए गए मामले के संबंध में विचारण में पेश होने के लिए नफे सिंह के साथ-साथ उनके नाम शामिल करने की दृष्टि से उनके विरुद्ध भी समन जारी करने की अधिकारिता है ?

(iii) क्या अपीलार्थियों के विरुद्ध समन जारी करने का विनिश्चय करने पर मजिस्ट्रेट से परिवाद मामले की प्रक्रिया का अनुसरण करना और उन्हें विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने से पूर्व साक्ष्य लेना अपेक्षित है या क्या उसका ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना उन्हें समन जारी करना न्यायोचित था ?

(iv) क्या सेशन न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के अधीन मूल अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में समन जारी कर सकता है ?

(v) क्या मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिए जाने पर सेशन न्यायाधीश संहिता की धारा 193 के अधीन पृथक् रूप से समन जारी कर सकेगा या क्या उसे उसका अवलंब लेने के लिए तब तक

प्रतीक्षा करनी होगी जब तक मामला संहिता की धारा 319 के अधीन वाले प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता ?

(vi) क्या **रंजीत सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चय, जिसके द्वारा **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय को अपास्त कर दिया गया था, सही विनिश्चित किया गया था अथवा नहीं ?

5. वे तथ्य जिनके परिणामस्वरूप विद्वान् मजिस्ट्रेट ने वह आदेश किया जिसे बाद में सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती दी गई थी, ये हैं कि नफे सिंह नामक व्यक्ति के सिवाय, जिसे अभियुक्त के रूप में दर्शाया गया था, अपीलार्थी धर्म पाल और अन्य व्यक्तियों को इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्तों के रूप में नामित किया गया था पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में शामिल किया गया था । पुलिस रिपोर्ट का परिशीलन करने के पश्चात्, विद्वान् प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट, हांसी ने अपीलार्थी और तीन अन्य व्यक्तियों को, जिन्हें आरोप पत्र में अभियुक्तों के रूप में शामिल नहीं किया गया था, नफे सिंह के साथ विचारण का सामना करने के प्रयोजनार्थ समन किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने संहिता की धारा 204 के अधीन समन जारी करने की कार्यवाही करने से पूर्व तात्पर्यित रूप से संहिता की धारा 190 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए किन्तु संहिता की धारा 200 और 202 में उपदर्शित अन्य उपबंधों का अवलंब लिए बिना कार्यवाही की थी ।

6. विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश को 2000 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 27 में हिसार के अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण के रूप में प्रश्नगत किया गया था, जिसने विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश को कायम रखा और पुनरीक्षण खारिज कर दिया । इसके पश्चात्, विद्वान् सेशन न्यायाधीश के आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और उसने भी विद्वान् मजिस्ट्रेट तथा सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिव्यक्त मतों को कायम रखा और हिसार के अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 25 मार्च, 2002 के उस आदेश को अभिखंडित करने के लिए संहिता की धारा 482 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन को खारिज कर दिया था जिसके द्वारा प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट, हांसी के तारीख 21 जुलाई, 2000 के उस आदेश को अभिपुष्ट किया गया था जो कि अपीलार्थियों को नारनौंद पुलिस थाने में भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 और

323 के अधीन रजिस्ट्रीकृत तारीख 13 अक्तूबर, 1999 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 272 के संबंध में समन करने के लिए संहिता की धारा 190 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में पारित किया गया था ।

7. धर्म पाल और अन्य व्यक्तियों द्वारा फाइल की गई 2003 की दांडिक अपील सं. 148 में अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री बृजेन्द्र चाहर ने यह दलील दी कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके त्रुटि की है कि सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट उन अपीलार्थियों को समन करने के लिए, जिन्हें आरोप पत्र में अभियुक्तों के रूप में नहीं दर्शाया गया है, अभ्यापत्ति याचिका ग्रहण करने के लिए सक्षम था । श्री चाहर ने यह दलील दी कि मजिस्ट्रेट ने अभ्यापत्ति याचिका की आड़ में अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय किसी मामले में संहिता की धारा 319 के अधीन सेशन न्यायाधीश की शक्तियों का अनाधिकार प्रयोग किया था । श्री चाहर ने इस बात पर जोर दिया कि जैसे ही मजिस्ट्रेट के समक्ष पुलिस रिपोर्ट फाइल कर दी गई थी, जिससे यह प्रकट होता था कि कोई ऐसा अपराध कारित किया गया था जो अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था, तब मजिस्ट्रेट का उसे सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के सिवाय कोई अन्य कृत्य नहीं था भले ही पुलिस रिपोर्ट को देखने से उसे यह विश्वास हो गया था कि पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में उल्लिखित अन्य व्यक्तियों को भी विचारण के लिए भेजना आवश्यक है । श्री चाहर ने यह दलील दी कि मजिस्ट्रेट ने अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया था और सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय दोनों ने विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश को कायम रखते हुए संहिता की धारा 190, 193 और 209 के उपबंधों का गलत अर्थ लगाया था । इस संबंध में, श्री चाहर ने 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों और प्रस्तुत संहिता में, जो 1898 की संहिता के स्थान पर रखी गई थी, उनके तत्स्थानी उपबंधों पर ध्यान केन्द्रित किया । विद्वान् काउन्सेल ने यह इंगित किया कि 1898 की संहिता की धारा 207क में मजिस्ट्रेट से सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करने से पूर्व आज्ञापक रूप से लघु विचारण करना अपेक्षित है जबकि 1973 की संहिता की धारा 190 के अधीन अधिकारिता रखने वाला मजिस्ट्रेट किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित दशाओं में कर सकता है :–

(क) उन तथ्यों का, जिनसे ऐसा अपराध बनता है परिवाद प्राप्त

होने पर ;

(ख) ऐसे तथ्यों के बारे में पुलिस रिपोर्ट पर ;

(ग) पुलिस रिपोर्ट से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त इस इत्तिला पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है ।

8. श्री चाहर ने यह दलील दी कि दोनों उपबंधों में जो अंतर है वह साशय है और वह मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाहियों को छोटा करने की दृष्टि से किया गया है । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि पुरानी संहिता के निबंधनानुसार, विचारण के दो प्रक्रम अनुध्यात किए गए थे जिन्हें 1973 की संहिता के संशोधित उपबंधों द्वारा समाप्त कर दिया गया था । इन परिस्थितियों में, **रंजीत सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के मुकाबले सही प्रतीत होता है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सेशन न्यायालय को संहिता की धारा 193 के अधीन अपराध का संज्ञान करने और ऐसे अन्य व्यक्तियों को समन करने की शक्ति प्राप्त थी जिनकी अपराध कारित करने में सह-अपराधिता का पता प्रथमदृष्ट्या अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से लगाया जा सकेगा ।

9. उपर्युक्त अपील में दी गई दलीलें नौशाद अली द्वारा फाइल की गई 2004 की दांडिक अपील सं. 865 में भी दोहराई गई थीं क्योंकि उक्त अपील में अंतर्वलित प्रश्न लगभग वही है जो धर्म पाल और अन्य व्यक्तियों द्वारा फाइल की गई अपील में अंतर्वलित है ।

10. 2005 की दांडिक अपील सं. 1334 में अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अमरेन्द्र शरण ने यह अतिरिक्त आधार अपनाया कि विद्वान् मजिस्ट्रेट का आदेश, जैसा कि वह वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा कायम रखा गया है, संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबंधों का अतिक्रमणकारी था चूंकि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने संहिता की धारा 190, 200 और 202 में और इसके पश्चात् धारा 204 में उपदर्शित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना स्तंभ 2 में सम्मिलित व्यक्तियों को समन जारी किए थे । श्री शरण ने यह दलील दी कि जब मजिस्ट्रेट ने अन्वेषक प्राधिकारियों द्वारा फाइल किए गए आरोप पत्र के संबंध में फाइल की गई अभ्यापत्ति याचिका के आधार पर संज्ञान करने का विनिश्चय किया था तब

उसे उपर्युक्त संहिता की धारा 190(1)(क) के अर्थान्तर्गत किसी परिवाद के आधार पर संज्ञान करने से संबंधित उपबंधों का अवलंब लेना चाहिए था । चूंकि ऐसा नहीं किया गया था इसलिए अपीलार्थियों के विरुद्ध समन जारी करने का निदेश देने वाला आदेश संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबंधों के अतिक्रमण में था और इसलिए वह अपास्त किए जाने योग्य है ।

11. 2003 की दांडिक अपील सं. 148 और 2013 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 12963 में अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ दवे ने यह दलील दी कि मजिस्ट्रेट के उस आदेश का मूल्यांकन करने के लिए जिसके द्वारा सेशन द्वारा विचारणीय मामले में समन जारी किए गए थे, संहिता की धारा 204 के अधीन अपीलार्थियों को समन जारी करने वाली मजिस्ट्रेट की शक्ति के स्रोत की परीक्षा करना आवश्यक है । श्री दवे ने इस बात पर जोर दिया कि ऐसे समन जारी करने संबंधी मजिस्ट्रेट की शक्ति का स्रोत केवल संहिता की धारा 190(1)(ख) में पाया जा सकता है, जिसमें निम्नलिखित रूप में उपबंध किया गया है :–

> "190. **मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों का संज्ञान** – (1) इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन विशेषतया सशक्त किया गया कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित दशाओं में कर सकता है :–
>
> (क) उन तथ्यों का, जिनसे ऐसा अपराध बनता है परिवाद प्राप्त होने पर ;
>
> (ख) ऐसे तथ्यों के बारे में पुलिस रिपोर्ट पर ;
>
> (ग) पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त इस इत्तिला पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है ।
>
> (2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को ऐसे अपराधों का, जिनकी जांच या विचारण करना उसकी क्षमता के अंदर है, उपधारा (1) के अधीन संज्ञान करने के लिए सशक्त कर सकता है ।"

12. श्री दवे ने यह दलील दी कि पुलिस रिपोर्ट और उसके संबंध में आक्षेप प्राप्त होने पर ही मजिस्ट्रेट किसी परिवाद याचिका के बारे में अपराधों का संज्ञान करने से संबंधित अन्य उपबंधों का अवलंब लिए बिना संहिता की धारा 204 के अधीन अपीलार्थियों को समन जारी कर सकेगा । श्री दवे ने यह दलील दी कि धारा 190(1)(ख) के अधीन पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेने के पश्चात् अगला प्रक्रम संहिता की धारा 204 के अधीन समन जारी करना होगा और इस विषय में कोई बीच के प्रक्रम नहीं हैं । तदनुसार, सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट के पास संहिता की धारा 173(3) के अधीन पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर किसी सेशन द्वारा विचारणीय मामले में एकमात्र उपलब्ध मार्ग सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करना होगा जो कि इसके पश्चात् संहिता की धारा 319 का अवलंब ले सकेगा चूंकि उसे आरोप पत्र के स्तंभ में नामित किसी अन्य व्यक्ति को उनके विरुद्ध नए साक्ष्य प्राप्त हुए बिना समन करने की कोई अन्य शक्ति नहीं थी । श्री दवे ने यह दलील दी कि संहिता की धारा 193 में निर्दिष्ट संज्ञान उस अपराध का नहीं होगा जिसकी बाबत मजिस्ट्रेट द्वारा पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है बल्कि विचारण के लिए सेशन न्यायालय के मामले की सुपुर्दगी का संज्ञान होगा ।

13. श्री दवे ने यह दलील दी कि संहिता की धारा 204 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें विद्वान् मजिस्ट्रेट के लिए किंचित मात्रा में विवेक का प्रयोग करना आवश्यक है, स्वतंत्र जांच कराकर अपने विवेक का प्रयोग करने की आवश्यकता बहुत कम थी । यह दलील दी गई थी कि चूंकि मजिस्ट्रेट को संहिता की धारा 190 के अधीन कार्यवाही करने की कोई शक्ति नहीं थी इसलिए मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाना है क्योंकि विद्वान् मजिस्ट्रेट के पास किसी अन्य कार्रवाई का सहारा लेने का कोई विकल्प नहीं बचा था । श्री दवे ने **रश्मि कुमार** बनाम **महेश कुमार भादा**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें संहिता की धारा 190, 200 और 202 के अधीन किसी अपराध का संज्ञान करने के प्रक्रम पर न्यायालय की शक्तियों का प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी अपराध का संज्ञान करने के प्रक्रम पर न्यायालय को केवल परिवाद में किए गए प्रकथनों पर विचार करना चाहिए क्योंकि न्यायालय से उस प्रक्रम पर

---

[1] (1997) 2 एस. सी. सी. 397.

किसी साक्ष्य की जांच करने या उसका मूल्यांकन करने की अपेक्षा नहीं है ।

14. श्री दवे ने **इंडियन कैरेट प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **कर्नाटक राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट ऐसी पुलिस रिपोर्ट के बावजूद कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता था, पुलिस अन्वेषण के अधीन साक्षियों के कथन को ध्यान में रखते हुए धारा 190(1)(ख) के अधीन अपराध का संज्ञान कर सकेगा और आदेशिका जारी कर सकेगा । इस न्यायालय के **अभिनंदन झा** बनाम **दिनेश मिश्रा**[2] वाले मामले में के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया गया था जिसमें यही मत व्यक्त किया गया था । उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मजिस्ट्रेट को पुलिस को यह निदेश देने की शक्ति नहीं थी कि वह आरोप पत्र प्रस्तुत करे जब कि पुलिस ने संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने के पश्चात् 1898 की संहिता की धारा 169 के अधीन की गई कार्रवाई की रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि अभियुक्त को विचारण के लिए भेजने के संबंध में कोई मामला नहीं बनता था ।

15. श्री दवे ने **राज किशोर प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जिसमें यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की धारा 209 के अधीन किसी मामले को सुपुर्द करते समय मजिस्ट्रेट को संहिता की धारा 319 के अधीन या किसी अन्य उपबंध के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी अन्य व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में सहयुक्त करने की कोई अधिकारिता नहीं थी । इसके अलावा यह मत व्यक्त किया गया था कि संहिता की धारा 209 के अधीन किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष की जाने वाली कार्यवाही कोई जांच नहीं होती है और उसके समक्ष रखी गई सामग्री साक्ष्य नहीं होती है । सुपुर्दगी पर ही सेशन न्यायालय संहिता की धारा 319 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है और अपने द्वारा लेखबद्ध साक्ष्य के आधार पर किसी नए अभियुक्त को जोड़ सकता है । श्री दवे ने इस बात पर भी जोर दिया कि **स्विल लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय में जो कि निर्देश न्यायालय की जानकारी में

---

[1] (1989) 2 एस. सी. सी. 132.

[2] [1967] 3 एस. सी. आर. 668.

[3] (1996) 4 एस. सी. सी. 495.

लाए गए मामलों में से एक है, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आरोप पत्र में अभियुक्त के रूप में उल्लिखित न किए गए किसी व्यक्ति को भी मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान करने के पश्चात् ही समन किया जा सकेगा यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, पुलिस द्वारा अभिलिखित कथन और अन्य दस्तावेज़ों को ध्यान में रखते हुए उसके विरुद्ध कुछ सामग्री पाई गई थी । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की धारा 319 ऐसी स्थिति में प्रवृत्त नहीं होती थी । श्री दवे ने यह दलील दी कि उपर्युक्त विनिश्चय में **राज किशोर प्रसाद** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय को ध्यान में नहीं रखा गया था जिसमें इससे बिल्कुल प्रतिकूल मत अपनाया गया था और इसलिए वह अनवधानता के कारण अपनाया गया मत था । श्री दवे ने यह दलील दी कि मजिस्ट्रेट द्वारा की गई संपूर्ण कार्यवाही विधि के उपबंधों के प्रतिकूल थी और इसलिए, इन मामलों में अपीलार्थियों को अभियुक्तों के रूप में समन करने वाले आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य हैं ।

16. राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री राजीव गौड़ 'नसीम' द्वारा इस बात पर जोर देने की ईप्सा की गई थी कि संहिता की धारा 193 के अधीन सेशन न्यायालय संज्ञान करने और समन जारी करने के लिए हकदार था । निर्देश न्यायालय द्वारा जो कुछ उपदर्शित किया गया था उसके प्रतिकूल श्री गौड़ ने इस बात पर जोर दिया कि **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में विधि का कथन सही रूप से किया गया था और सेशन न्यायालय मामले को सुपुर्दगी के लिए प्राप्त करने के पश्चात् संहिता की धारा 193 के अधीन संज्ञान करने और आरोप पत्र में अभियुक्तों के रूप में नामित न किए गए व्यक्तियों को समन जारी करने के लिए हकदार था ।

17. इन मामलों में से तीन मामलों में बिहार राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् स्थायी काउन्सेल श्री गोपाल सिंह ने यह दलील दी कि इस प्रश्न पर **किशोरी सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में विचार किया गया था जिसमें **रंजीत सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत का अनुसरण किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की स्कीम के अधीन ऐसे किसी मामले में जहां अपराध एकमात्र रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, जब पुलिस आरोप पत्र फाइल करती है और केवल कुछ व्यक्तियों को अभियुक्तों के रूप में शामिल करती है हालांकि कई और व्यक्तियों को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित किया गया हो, तब मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश को भी संहिता की धारा 319 के

प्रक्रम से पूर्व किसी ऐसे प्रक्रम पर उन्हें अभियुक्त व्यक्तियों के रूप में शामिल करने की अधिकारिता नहीं होगी जब विचारण के दौरान कुछ साक्ष्य या सामग्री एकत्र की गई थी ।

18. इस न्यायालय द्वारा सुने गए अनेक मामलों में से अंतिम मामले में, अर्थात्, चन्द्रिका प्रसाद यादव नामक व्यक्ति द्वारा बिहार राज्य के विरुद्ध फाइल की गई 2005 की दांडिक अपील सं. 1334 में प्रत्यर्थी सं. 2 - परिवादी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री के. के. त्यागी ने यह दलील दी कि मजिस्ट्रेट के पास संज्ञान लिए जाने के पश्चात् भी उन व्यक्तियों के विरुद्ध आदेशिका जारी करने की पर्याप्त शक्तियां थीं जिन्हें अभियुक्त के रूप में नहीं दर्शाया गया था किन्तु उन्हें आरोप पत्र के स्तंभ 2 में शामिल किया गया था । उसने उन विभिन्न विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया जिनके प्रति अन्य काउन्सेल द्वारा पहले ही निर्देश किया जा चुका था ।

19. 2004 की दांडिक अपील सं. 865 में भी, प्रत्यर्थी सं. 2 (परिवादी) की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री शिशिर पिनाकी ने इस बात पर जोर दिया कि मजिस्ट्रेट को संविधान के अनुच्छेद 20 के अधीन कार्यवाहियों पर नियंत्रण निहित किया गया है और इसलिए संहिता की धारा 204 के अधीन आदेशिका जारी करने की कार्यवाही करने से पूर्व धारा 202 के उपबंधों का अवलंब लिए बिना संहिता की धारा 204 के अधीन समन जारी करना उसकी शक्तियों के भीतर था भले ही वह संहिता की धारा 173(3) के अधीन फाइल की गई पुलिस रिपोर्ट से सहमत नहीं था ।

20. चूंकि इस निर्देश में मुद्दा ऐसे मजिस्ट्रेट की शक्तियों के संबंध में है जिसे पुलिस प्राधिकारियों द्वारा संहिता की धारा 173(3) के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, इसलिए हमारे लिए कार्यवाहियां संस्थित करने के लिए अपेक्षित शर्तों से संबंधित संहिता के अध्याय 14 की स्कीम की परीक्षा करना आवश्यक है ।

21. धारा 190, जो कि इसमें इसके ऊपर उद्धृत की गई है, किसी प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट या उपधारा (2) के अधीन विशेषतया सशक्त किए गए किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को तीन आकस्मिकताओं में किसी अपराध का संज्ञान करने के लिए सशक्त करती है । वर्तमान मामले में, हमारा संबंध धारा 190(1)(ख) के उपबंधों से है चूंकि पुलिस द्वारा संहिता की धारा

173(3) के अधीन पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है जिसमें एक अभियुक्त को विचारण के लिए भेजा गया है जबकि अन्य अभियुक्तों के नाम रिपोर्ट के स्तंभ 2 में सम्मिलित किए गए हैं । अभिलेख पर मौजूद सामग्री से प्रकट तथ्यों और संबंधित पक्षकारों की ओर से किए गए मौखिक निवेदनों से यह उपदर्शित होता है कि ऐसी पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर विद्वान् मजिस्ट्रेट ने सीधे ही मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने की कार्यवाही नहीं की थी बल्कि परिवादी की ओर से आक्षेप किए जाने पर, जिसे अभ्यापत्ति याचिका मान लिया गया था, संहिता की धारा 190, धारा 200 या धारा 202 के अधीन यथा-अनुध्यात कोई अतिरिक्त जांच किए बिना केवल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर समन जारी करने की कार्यवाही की थी और उन अभियुक्तों को समन जारी किए थे जिन्हें आरोप पत्र के स्तंभ 2 में नामित किया गया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अन्वेषक अधिकारी द्वारा उन अभियुक्तों के विरुद्ध फाइल की गई अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया था जिनके नाम स्तंभ 2 में शामिल किए गए थे क्योंकि उसे यह विश्वास हो गया था कि उनके विरुद्ध भी विचारण चलाने का प्रथमदृष्ट्या मामला साबित हो गया था और उसने अभियुक्त नफे सिंह के साथ अन्य अभियुक्तों को विचारण का सामना करने के लिए समन जारी किए थे । विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा अपीलार्थियों को नफे सिंह के साथ विचारण में भेजने के लिए समन करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया से जो प्रश्न उद्भूत हुए हैं वे इसमें इससे पूर्व इस निर्णय के पैरा 4 में पहले ही उपवर्णित किए गए हैं ।

22. जहां तक प्रथम प्रश्न का संबंध है, हम श्री चाहर और श्री दवे द्वारा दी गई इन दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, जिससे यह दर्शित होता था कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मजिस्ट्रेट को मामला सेशन न्यायालय के विचारण के लिए सुपुर्द करने के सिवाय कोई अन्य कृत्य नहीं करना था और सेशन न्यायालय ही विचारण में किसी अन्य व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में शामिल करने के लिए संहिता की धारा 319 का अवलंब ले सकता था । दूसरे शब्दों में, श्री दवे के अनुसार, धारा 190(1)(ख) के अधीन संज्ञान करने और संहिता की धारा 204 के अधीन अभियुक्तों को समन जारी करने के बीच कोई मध्यवर्ती प्रक्रम नहीं हो सकता था । ऐसे निर्वचन के प्रभाव के परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जहां पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों पर न तो सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट का और न ही

सेशन न्यायालय का कोई नियंत्रण होगा जब तक विचारण धारा 319 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता । इसके अलावा, यदि सेशन न्यायाधीश अंततोगत्वा पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध सामग्री पाता है तो ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण नए सिरे से आरंभ किया जाना होगा जिसके परिणामस्वरूप न केवल विचारण दोहराया जाएगा बल्कि उसमें देरी भी होगी ।

23. हमारी राय में, **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत अधिक स्वीकार्य है चूंकि जैसा कि इसमें इसके पूर्व निर्दिष्ट मामलों में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, मजिस्ट्रेट के पास उस अंतिम रिपोर्ट से, जो कि संहिता की धारा 173(3) के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा फाइल की जा सकती है, असहमत होने की और पुलिस रिपोर्ट से असंबद्ध होकर अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की पर्याप्त शक्तियां हैं जो शक्ति सेशन न्यायालय के पास तब तक नहीं है जब तक कि कार्यवाही धारा 319 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाती । उक्त स्थिति का परिणाम यह होगा कि यद्यपि मजिस्ट्रेट को संहिता की धारा 173(3) के अधीन फाइल की गई पुलिस रिपोर्ट से असहमत होने की शक्तियां प्राप्त थीं तथापि, वह ऐसी कार्यवाही करने का आश्रय लेने में निस्सहाय था जबकि सेशन न्यायाधीश भी विचारण के लिए भेजे गए अभियुक्तों से भिन्न किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उस समय तक असमर्थ था जब तक साक्ष्य पेश नहीं कर दिए जाते और अभियुक्तों की ओर से साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं कर ली जाती ।

24. हमारी राय में, मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(3) के अधीन उसके समक्ष प्रस्तुत की गई पुलिस रिपोर्ट का संज्ञान लेने पर सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते समय भूमिका निभानी होती है । यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत होता है तो उसके पास दो विकल्प हैं । वह उस अभ्यापत्ति याचिका के आधार पर जो फाइल की जा सकती है, कार्यवाही कर सकता है या वह पुलिस रिपोर्ट से असहमति दिखाते हुए आदेशिका जारी कर सकता है और अभियुक्तों को समन कर सकता है । इसके पश्चात्, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए मामला बनता था तो उक्त व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण करने की कार्यवाही कर सकेगा या यदि उसका यह समाधान हो गया था कि ऐसा मामला साबित

हो गया था जो कि सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था तो वह मामले पर आगे कार्यवाही करने के लिए उसे सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर सकेगा ।

25. अब हम इस तीसरे प्रश्न पर आते हैं कि मजिस्ट्रेट द्वारा कौन सी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना है यदि उसका यह समाधान हो गया था कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत की गई अंतिम रिपोर्ट के बावजूद विचारण करने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला साबित हो गया था । ऐसी दशा में, यदि मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का विनिश्चय किया था तो उसे पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही कार्यवाही करनी होगी और या तो मामले की जांच करनी होगी या यदि वह सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय पाया गया था उसे सेशन न्यायालय को सुपुर्द करना होगा ।

26. प्रश्न सं. 4, 5 और 6 एक-दूसरे से लगभग जुड़े हुए हैं । प्रश्न सं. 4 का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए, अर्थात् यह कि सेशन न्यायाधीश विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा उसे मामला सुपुर्द किए जाने पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के अधीन समन जारी करने का हकदार था । संहिता की धारा 193 सेशन न्यायालय द्वारा अपराधों का संज्ञान करने के बारे में है और उसमें निम्न प्रकार उपबंध किया गया है : –

> "193. **अपराधों का सेशन न्यायालयों द्वारा संज्ञान** – इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है ।"

इस धारा के मुख्य शब्द ये हैं कि "कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है ।" उक्त उपबंध में यह आदिष्ट है कि प्रथमतः मामला मजिस्ट्रेट द्वारा सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाना चाहिए । दूसरी शर्त यह है कि मामला उसे सुपुर्द किए जाने के पश्चात् ही सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपराध का संज्ञान कर सकता है । यद्यपि श्री दवे द्वारा यह बताने का प्रयास किया गया है कि धारा 193 में उपदर्शित संज्ञान किसी अपराध के संज्ञान के संबंध में नहीं है बल्कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित सुपुर्दगी आदेश के संबंध में है, तथापि,

धारा 193 के इन स्पष्ट शब्दों को ध्यान में रखते हुए कि सेशन न्यायालय उक्त धारा के अधीन अपराधों का संज्ञान कर सकता है हम इस दलील को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं ।

27. अब हम अगले प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या धारा 209 के अधीन मजिस्ट्रेट के लिए मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने से पूर्व अपराध का संज्ञान करना अपेक्षित था । यह सुस्थापित है कि किसी अपराध का संज्ञान केवल एक बार किया जा सकता है । यदि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करता है और इसके बाद मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द करता है तो अपराध का नए सिरे से संज्ञान करने और इसके पश्चात् समन जारी करने की कार्यवाही करने का प्रश्न विधि के अनुसार नहीं है । यदि अपराध का संज्ञान किया जाना है तो वह या तो मजिस्ट्रेट द्वारा या सेशन न्यायालय द्वारा किया जा सकेगा । संहिता की धारा 193 में अत्यंत स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया गया है कि जब विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया जाता है तब सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता ग्रहण कर लेता है और सब कुछ उस अधिकारिता के ग्रहण करने के बाद होता है । अतः, धारा 209 के उपबंधों का पठन इस रूप में करना होगा कि विद्वान् मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने की निष्क्रिय भूमिका निभाता है । मजिस्ट्रेट द्वारा अंशतः संज्ञान करने और अंशतः विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा संज्ञान करने का कोई प्रश्न नहीं हो सकता है ।

28. मामले को उस दृष्टि से देखने पर हमें **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त दृष्टिकोण से सहमत होने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि सेशन न्यायालयों को उसे मामला सुपुर्द करने पर उन व्यक्तियों के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान करने की अधिकारिता होती है जिन्हें अपराधियों के रूप में नामित नहीं किया गया है किन्तु जिनकी मामले में सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रकट होगी । अतः, सेशन न्यायाधीश धारा 209 के अधीन सुपुर्दगी पर साक्ष्य लेखबद्ध किए बिना भी पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों को उन व्यक्तियों के साथ, जिन्हें पहले ही नामित किया गया है, विचारण में प्रस्तुत होने के लिए समन कर सकेगा ।

29. हम श्री दवे की इस दलील को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं

कि सेशन न्यायालय के पास उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने से पूर्व जिनके विरुद्ध विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करते समय भेजे गए मामले के कागजपत्रों में अंतर्विष्ट सामग्री से प्रथमदृष्ट्या मामला साबित होता है, उस समय तक प्रतीक्षा करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होगा जब तक मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता है ।

30. इस आशय के निर्देश का उत्तर कि क्या **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में **रंजीत सिंह** (उपर्युक्त) वाला विनिश्चय सही था अथवा नहीं, यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि **किशन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में किया गया विनिश्चय सही विनिश्चय था और विद्वान् सेशन न्यायाधीश आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित सुपुर्दगी आदेश के परिणामस्वरूप उसे पारेषित अभिलेखों के आधार पर धारा 193 के अधीन समन जारी कर सकता था ।

31. हमारे उपर्युक्त विनिश्चय के परिणामस्वरूप, निर्देश न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत स्वीकार किया जाता है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि **किशन सिंह** बनाम **बिहार राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में किया गया विनिश्चय न कि **रंजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में किया गया विनिश्चय विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के अधीन मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के पश्चात् सेशन न्यायालय की शक्तियों की बाबत सही विधि अधिकथित करता है ।

32. यह मामला इस निर्णय में हमारे द्वारा व्यक्त मतों के अनुसार लंबित दांडिक अपीलों का निपटारा करने के लिए तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को प्रतिप्रेषित किया जाता है ।

तदनुसार आदेश किया गया ।

ग्रो.

फैकल्टी एसोसिएशन आफ एम्स

बनाम

भारत संघ और अन्य

18 जुलाई, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर, न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर, न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति एम. वाई इकबाल और न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 15(4), 16(4), 16(1), 14 और 335 – आरक्षण – अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में सुपर-स्पेशियल्टी पदों पर आरक्षण – सहायक आचार्य और उससे ऊपर वाले पदों पर प्रवेश परीक्षा के पश्चात् आरक्षण नीति अपनाना – इंदिरा साहनी वाले निर्णय में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा व्यक्त मत को दोहराते हुए आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और अन्य तकनीकी पदों के लिए सुपर-स्पेशियल्टी प्रक्रम पर योग्यता के संबंध में कोई समझौता नहीं किया जा सकता है इसलिए ऐसे पदों पर आरक्षण नीति अंगीकार करना अननुज्ञेय है ।

जब एम्स (अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान) के फैकल्टी एसोसिएशन द्वारा फाइल की गई 2002 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 2106 पर विचार करना आरंभ किया गया था तब दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा उसके संबंध में सूचना जारी की गई थी और यह अनुबद्ध किया गया था कि आदेश पारित किए जाने के पश्चात् आरक्षण नीति के अनुसार की गई कोई नियुक्ति अगले आदेशों तक अनंतिम होगी । जब अपील पर 2002 की सिविल अपील सं. 5119 के साथ तारीख 20 फरवरी, 2003 को सुनवाई आरंभ की गई तब उक्त मामलों में अवधारणार्थ अंतर्वलित मुद्दों के महत्वपूर्ण स्वरूप तथा इस समस्या के आवर्ती स्वरूप पर विचार करते हुए यह उचित समझा गया था कि मामलों की सुनवाई किसी बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा की जाए । इसके पश्चात्, तारीख 12 फरवरी, 2004 को मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता वाली तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का यह मत था कि इन मामलों में संविधान के निर्वचन के बारे में विधि के सारवान् प्रश्न अंतर्वलित हैं और उनकी सुनवाई पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा की जानी अपेक्षित है । इस निदेश के अनुसरण में मामला

अनेक बार पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया और अंततोगत्वा उन्हें तारीख 2 जुलाई, 2013 को पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया गया था । यद्यपि यह मामला अब पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष है किन्तु निर्देश के निबंधन पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं । हमें अभिवचनों और उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय से यही पता चला है कि जिस प्रश्न पर विचार किया जाना है वह यह है कि क्या अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एम्स" कहा गया है) में स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी संकाय पदों पर आरक्षण लागू नहीं होता है । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इस न्यायालय के कई विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए आरक्षण नामंजूर किया गया था, स्वयं को सीमित प्रश्न तक परिसीमित किया, अर्थात्, क्या सहायक आचार्य के प्रवेश स्तर के संकाय पद और सुपर-स्पेशियल्टी पदों पर नियुक्तियां करने के लिए आरक्षण नीति लागू नहीं होती है और यह कि क्या एम्स द्वारा तारीख 11 जनवरी, 1983 और 27 मई, 1984 को अंगीकृत संकल्प विखंडित किए जाने योग्य थे । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का तदनुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, डाक्टरेट प्रक्रम तक आरक्षण प्रदान किया जा रहा था किन्तु डाक्टरेट-पश्चात् वाले पाठ्यक्रमों और अनुसंधान के लिए भर्ती के आरंभिक प्रक्रम पर लिखित परीक्षा में बैठना होता था और जो अभ्यर्थी सफल होते थे उन्हें इसके पश्चात् अध्यापन की विभिन्न विधायों में भर्ती किया जाता था । समस्या उस प्रक्रम पर आरंभ होती है जब इसके पश्चात् विभिन्न पाठ्यक्रमों की बाबत पद आरक्षित किए जाते हैं । जब एक बार कोई अभ्यर्थी सहायक प्राचार्य के पद से आरंभ होने वाले संकाय के विभिन्न पदों पर भर्ती के लिए अर्हित हो जाता है तो इसके पश्चात् अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के समुदायों के अभ्यर्थियों के लिए पद आरक्षित करने का अब कोई तर्क नहीं था । सुपर-स्पेशियल्टी के उस स्तर तक आरक्षण का प्रश्न उद्भूत नहीं होना चाहिए था जैसा कि इंदिरा साहनी वाले मामले में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मत व्यक्त किया था । सुपर-स्पेशियल्टी के स्तर पर कोई आरक्षण नहीं होना चाहिए और यह आरक्षण हर हालत में परिमाणनीय अंकड़ों पर आधारित होगा । वर्तमान मामले में आनुपातिक प्रतिनिधित्व न कि पर्याप्तता का, जैसा कि इंदिरा साहनी वाले मामले में या एम. नागराज

वाले मामले में समझा गया है, अवलंब लिया गया है । क्रीमी लेयर की संकल्पना के प्रति निर्देश करते समय इस बात पर जोर दिया गया कि "समता" का यह अर्थ नहीं है कि ऐसी समता बनाए रखने के लिए आरक्षण प्रत्येक मामले में लागू किया जाना था । (पैरा 7 और 13)

जबकि आरंभिक भर्ती के प्रक्रम पर योग्यता की संगतता और महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता है किन्तु इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि आरक्षण के उसी विचार को लागू करने से कम प्रतिभावान व्यक्ति का चयन विवक्षित होता है । इसके साथ-साथ यदि सामाजिक न्याय के सांविधानिक वचन को छोड़ा जाना है तो ऐसी कीमत चुकानी होगी । तथापि, अनुच्छेद 16 के उपबंधों के संबंध में एक विभेद किया गया था और अनुच्छेद 335 सुसंगत होगा और कोई भी न्यूनतम मानदंड विहित न करना अनुज्ञेय नहीं होगा । चिकित्सा अधिकारियों की नियुक्ति के मामले में सरकार या लोक सेवा आयोग यह कहने के हकदार नहीं होंगे कि अन्य व्यक्तियों के न्यूनतम अंक विहित करते समय अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए न्यूनतम अर्हक अंक नहीं होंगे । ऐसी कतिपय सेवाएं और पद हैं जहां या तो उनसे सहबद्ध कर्तव्यों की प्रकृति के कारण या पदानुक्रम के उस स्तर के कारण जहां वे होते हैं, केवल योग्यता ही महत्वपूर्ण होती है । ऐसी स्थितियों में, आरक्षण के लिए उपबंध करने की सलाह नहीं दी जा सकती है । कतिपय पदों की बाबत कतिपय सेवाओं में विभिन्न तकनीकी पदों के संबंध में आरक्षण के नियम को लागू करना उपयुक्त नहीं हो सकता है जिनमें आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और अन्य वैज्ञानिक और तकनीकी पदों में सुपर-स्पेशियल्टी में के पद भी शामिल हैं । इससे भिन्न दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता है, यद्यपि यह सुझाव दिया गया है कि ऐसी मताभिव्यक्ति बाध्यकारी नहीं है क्योंकि यह एक इतरोक्ति प्रकृति की है । इस मत का समर्थन नहीं किया जा सकता है चूंकि आरक्षण की संकल्पना से ही सामान्य योग्यता विवक्षित होती है (पैरा 18 और 19)

यद्यपि इस मामले पर कुछ विस्तार से विचार-विमर्श किया गया है तथापि, सुपर-स्पेशियल्टी स्तर पर आरक्षण के संबंध में उठाए गए मुख्य मुद्दे पर इंदिरा साहनी वाले मामले में इस न्यायालय के नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा पहले ही विचार किया गया है । इस विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, इस मुद्दे पर नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अभिव्यक्त मत से

भिन्न मत नहीं अपनाया जा सकता है । (पैरा 17)

अनुसृत निर्णय

		पैरा
[1999]	(1999) 7 एस. सी. सी. 120 : **डा. प्रीति श्रीवास्तव** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	11,12,17,19
[1992]	(1992) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 215 : **इंदिरा साहनी** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	2,5,7,8,12,13, 15,17,18,19
[1984]	[1984] 3 एस. सी. आर. 942 = (1984) 3 एस. सी. सी. 654 : **डा. प्रदीप जैन और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	2,10,11, 16,17,19
[1981]	[1981] 1 उम. नि. प. 129 = [1980] 2 एस. सी. आर. 831 = (1980) 2 एस. सी. सी. 768 : **डा. जगदीश सरन और अन्य** बनाम **भारत संघ** ।	2,9,10,11, 16,17,19

निर्दिष्ट निर्णय

[2006]	(2006) 8 एस. सी. सी. 212 : **एम. नागराज और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	13,16
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 394 : **ई. वी. चिन्नय्या** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ;	13
[2003]	(2003) 11 एस. सी. सी. 146 : **सौरभ चौधरी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	12
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 481 : **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	12

[1988]	(1988) सप्ली. एस. सी. सी. 794 : **डा. फज़ल गफूर** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	10
[1981]	(1981) 4 एस. सी. सी. 296 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **निवेदिता जैन** ;	18
[1959]	[1959] सप्ली. 2 एस. सी. आर. 375 : **आय-कर आयुक्त, हैदराबाद-डक्कन** बनाम **वज़ीर सुल्तान एंड संस** ।	12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की सिविल अपील सं. 4500 तथा 5119.

1994 की सिविल रिट याचिका सं. 4223 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 26 नवम्बर, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री मोहन पराशरण, महासालिसिटर, सिद्धार्थ लूथरा, अपर महासालिसिटर, पी. पी. राव, डा. राजीव धवन, मुकुल गुप्ता, ए. मरियापुथम, ज्येष्ठ अधिवक्ता, आर. के. गुप्ता, एस. के. गुप्ता, एम. के. सिंह, शेखर कुमार, ए. सुब्बा राव, डी. एल. चिदानंद, एन. मेय्यप्पन, (सुश्री) सुप्रिया जुनेजा, (सुश्री) अंजलि चौहान, ऋषभ कौशिक, (सुश्री) सुषमा सूरी, डा. एम. पी. राजू, (सुश्री) मैरी सारिया, जेम्स पी. थामस, (डा.) सत्य प्रकाश शर्मा, महमूद प्राचा, गौरव यादव, सुमित बब्बर और नरेश कुमार

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर ने दिया ।

मु. न्या. कबीर – जब एम्स (अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान) के फैकल्टी एसोसिएशन द्वारा फाइल की गई 2002 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 2106 पर विचार करना आरंभ किया गया था तब दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा उसके संबंध में सूचना जारी की गई थी और यह अनुबद्ध किया गया था कि आदेश पारित किए जाने के पश्चात् आरक्षण नीति के अनुसार की गई कोई नियुक्ति अगले आदेशों तक अनंतिम होगी ।

जब अपील पर 2002 की सिविल अपील सं. 5119 के साथ तारीख 20 फरवरी, 2003 को सुनवाई आरंभ की गई तब उक्त मामलों में अवधारणार्थ अंतर्वलित मुद्दों के महत्वपूर्ण स्वरूप तथा इस समस्या के आवर्ती स्वरूप पर विचार करते हुए यह उचित समझा गया था कि मामलों की सुनवाई किसी बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा की जाए । इसके पश्चात्, तारीख 12 फरवरी, 2004 को मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता वाली तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का यह मत था कि इन मामलों में संविधान के निर्वचन के बारे में विधि के सारवान् प्रश्न अंतर्वलित हैं और उनकी सुनवाई पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा की जानी अपेक्षित है । इस निदेश के अनुसरण में मामला अनेक बार पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया और अंततोगत्वा उन्हें तारीख 2 जुलाई, 2013 को पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया गया था ।

2. यद्यपि यह मामला अब पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष है किन्तु निर्देश के निबंधन पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं । हमें अभिवचनों और उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय से यही पता चला है कि जिस प्रश्न पर विचार किया जाना है वह यह है कि क्या अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एम्स" कहा गया है) में स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी संकाय पदों पर आरक्षण लागू नहीं होता है । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **इंदिरा साहनी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1], **डा. जगदीश सरन और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] तथा **डा. प्रदीप जैन और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए आरक्षण नामंजूर किया गया था, स्वयं को सीमित प्रश्न तक परिसीमित किया, अर्थात्, क्या सहायक आचार्य के प्रवेश स्तर के संकाय पद और सुपर-स्पेशियल्टी पदों पर नियुक्तियां करने के लिए आरक्षण नीति लागू नहीं होती है और यह कि क्या एम्स द्वारा तारीख 11 जनवरी, 1983 और 27 मई, 1984 को अंगीकृत संकल्प विखंडित किए जाने योग्य थे ।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री

---

[1] (1992) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 215

[2] [1981] 1 उम. नि. प. 129 = [1980] 2 एस. सी. आर. 831 = (1980) 2 एस. सी. सी. 768.

[3] [1984] 3 एस. सी. आर. 942 = (1984) 3 एस. सी. सी. 654.

पी. पी. राव ने सर्वप्रथम अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 1956 के उद्देश्यों और कारणों के कथन के प्रति निर्देश किया जिसमें निम्न प्रकार उपबंधित है : –

> "चिकित्सा व्यवसायियों में वृत्तिक सक्षमता को सुधारने के लिए, देश के सभी आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों और दूसरी सहबद्ध संस्थाओं के समक्ष स्नातकोत्तर और स्नातकपूर्व दोनों स्तर की आयुर्विज्ञान शिक्षा का उच्च मानक रखना आवश्यक है । इसी प्रकार, आयुर्विज्ञान अनुसंधान के संवर्धन के लिए यह आवश्यक है कि देश स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान शिक्षा में स्व-पर्याप्तता प्राप्त करे । इन उद्देश्यों की प्राप्ति तब तक संभव नहीं है जब तक कि स्नातकपूर्व और स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान दोनों के लिए बहुत ही उच्च कोटि की सुविधाएं एक ही स्थान पर केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं । यह विधेयक नई दिल्ली में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के नाम से ज्ञात एक संस्था की स्थापना के द्वारा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए है । यह संस्थान अपनी सभी शाखाओं में स्नातकपूर्व और स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान शिक्षा में शिक्षण के नमूनों का विकास इस प्रकार करेगा कि ये सभी आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों और अन्य सहबद्ध संस्थाओं के लिए आयुर्विज्ञान शिक्षा का उच्च मानक प्रदर्शित करें और यह स्वास्थ्य संबंधी क्रियाकलापों को सभी महत्वपूर्ण शाखाओं के कार्मिकों के प्रशिक्षण के लिए और आयुर्विज्ञान अनुसंधान के विभिन्न पहलुओं के लिए भी उच्च कोटि की सुविधाएं प्रदान करेगा । संस्थान को आयुर्विज्ञान में डिग्रियां, डिप्लोमा और अन्य शैक्षणिक उपाधियां मंजूर करने की शक्ति होगी जो भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1933 के प्रयोजन के लिए मान्यताप्राप्त आयुर्विज्ञान की डिग्रियां होंगी ।"

4. श्री राव ने अधिनियम की धारा 5 के प्रति भी निर्देश किया जिसमें इस संस्थान को राष्ट्रीय महत्व का संस्थान घोषित किया गया है । जैसा कि श्री राव द्वारा इंगित किया गया है, अधिनियम की धारा 13 उन उद्देश्यों के अनुरूप है जिनके लिए संस्थान का सृजन किया गया था और धारा 14 शिक्षण संस्थान के रूप में संस्थान के कृत्यों के शैक्षणिक पहलुओं से संबंधित संस्थान के कृत्यों के संबंध में है ।

5. श्री राव ने यह दलील दी कि इससे पूर्व **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस प्रश्न की परीक्षा की गई थी और विचार किया गया था

जिसमें आरक्षण के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायपीठ ने सेवाओं और पदों पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 335 के उपबंधों पर भी विचार किया था । विद्वान् काउन्सेल ने न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी के सम्मत निर्णय के प्रति निर्देश करते हुए विशेष रूप से पैरा 838 और 839 और उनमें की गई मताभिव्यक्तियों के प्रति निर्देश किया । चूंकि पैरा 838 नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ के मत पर केन्द्रित है इसलिए उसे इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "838. जबकि अनुच्छेद 335 के संबंध में हमारी यह राय है कि कतिपय ऐसी सेवाएं और प्रास्थितियां हैं जिनमें या तो उनसे संसक्त कर्तव्यों की प्रकृति या उस स्तर (सोपानिकी में) के कारण जिस पर वे इन्हें अभिप्राप्त करते हैं, इसमें इसके ऊपर स्पष्टीकृत योग्यता का ही महत्व है । ऐसी स्थितियों में, आरक्षण का उपबंध करना उपयुक्त नहीं हो सकता है । उदाहरणार्थ, अनुसंधान और विकास संगठनों/विभागों/संस्थाओं में, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी में स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी विषयों में और भौतिक विज्ञान और गणित में ऐसे अन्य पाठ्यक्रमों में, रक्षा सेवाओं और उससे संसक्त स्थापनों में के तकनीकी पद । इसी प्रकार, उच्चतर सोपानों, उदाहरणार्थ, प्रोफेसर (शिक्षा में), इंडियन एयरलाइन्स और एयर इंडिया में पायलट, नाभिकीय और अंतरिक्ष उपयोजन में वैज्ञानिक और तकनीशियन के पदों की दशा में आरक्षण के लिए उपबंध करना उपयुक्त नहीं होगा ।"

6. वास्तव में, पैरा 838 और पैरा 839 दोनों में उन क्षेत्रों को विनिर्दिष्ट करते हुए जिनमें आरक्षण लागू करना उपयुक्त नहीं हो सकता है, विद्वान् न्यायाधीश ने अनुसंधान और विकास संगठनों/विभागों/संस्थाओं में, आयुर्विज्ञान में स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी विषयों में के पद शामिल किए हैं । ऐसी ही मताभिव्यक्ति पैरा 839 में दोहराई गई है जिसमें यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायपीठ की यह राय थी कि कतिपय सेवाओं में और कतिपय पदों की बाबत आरक्षण का नियम लागू करना उपयुक्त नहीं हो सकेगा और पुनः चौथी मद के रूप में - आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और अन्य वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों में सुपर-स्पेशियल्टी विषयों में के पद शामिल किए थे । श्री राव ने यह दलील दी कि जहां तक आयुर्विज्ञान का संबंध है, "सुपर-स्पेशियल्टी" से "डाक्टरेट-

पश्चात् के पाठ्यक्रम" अभिप्रेत हैं ।

7. श्री राव ने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में, डाक्टरेट प्रक्रम तक आरक्षण प्रदान किया जा रहा था किन्तु डाक्टरेट-पश्चात् वाले पाठ्यक्रमों और अनुसंधान के लिए भर्ती के आरंभिक प्रक्रम पर लिखित परीक्षा में बैठना होता था और जो अभ्यर्थी सफल होते थे उन्हें इसके पश्चात् अध्यापन की विभिन्न विधायों में भर्ती किया जाता था । श्री राव ने यह दलील दी कि समस्या उस प्रक्रम पर आरंभ होती है जब इसके पश्चात् विभिन्न पाठ्यक्रमों की बाबत पद आरक्षित किए जाते हैं । श्री राव ने यह दलील दी कि जब एक बार कोई अभ्यर्थी सहायक प्राचार्य के पद से आरंभ होने वाले संकाय के विभिन्न पदों पर भर्ती के लिए अर्हित हो जाता है तो इसके पश्चात् अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के समुदायों के अभ्यर्थियों के लिए पद आरक्षित करने का अब कोई तर्क नहीं था । श्री राव ने यह दलील दी कि सुपर-स्पेशियल्टी के उस स्तर तक आरक्षण का प्रश्न उद्भूत नहीं होना चाहिए था जैसा कि **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मत व्यक्त किया था ।

8. श्री राव ने यह दलील दी कि जबकि अनुच्छेद 16(4) राज्य को नियुक्तियों या पदों पर किसी पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में आरक्षण के लिए उपबंध करने के लिए सशक्त करता है किन्तु राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में उसका पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं था और उसे **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में उपदर्शित रीति में पढ़ा और समझा जाना होगा । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि यद्यपि **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के पैरा 838 और 839 में निश्चित निदेश नहीं दिए गए हैं तथापि, उसमें की गई मताभिव्यक्तियां सरकार और संस्थाओं, जैसा कि एम्स के लिए ऐसे दिशानिर्देश थे जिनका अनुसरण किया जाना है जिससे कि उत्कृष्ट अभ्यर्थियों को सुपर-स्पेशियल्टी विषयों में अध्ययन करने का अवसर उपलब्ध कराया जा सके जिसमें उच्चतर कुशलता की आवश्यकता होती है और जहां गुणता और विशेषज्ञता के संबंध में कोई समझौता न किया जा सके ।

9. श्री राव ने अपने उपर्युक्त निवेदनों के समर्थन में **डा. जगदीश सरन और अन्य** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जिसमें पैरा 21, पैरा 22 और पैरा 23 में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने निर्णय लिखते हुए आरक्षण

के संबंध में मत व्यक्त किए थे और जिसे उसने इस रूप में निर्दिष्ट किया है कि परीक्षित योग्यता के बड़े पैमाने पर निर्वासन को खोला जाए जिससे कि आशा है कि कुछ दलित प्रतिभाओं का चयन हो जाए, समानता की वेदी पर उत्कृष्टता का पूर्णतः त्याग - जब कि संविधान प्रत्येक के लिए विधि के समक्ष समता और विधि के समान संरक्षण का आदेश करता है - घातक, मूर्खतापूर्ण, शैक्षणिक तकनीक की स्वतः विफलता और राष्ट्र विरोधी है यदि इन सब बातों को राज्य की नीति का सामान्य नियम बना दिया जाता है । माननीय न्यायमूर्ति ने आगे यह मत व्यक्त किया कि उचित अधिमानता, युक्तियुक्त आरक्षण, पूर्विक आवश्यकताओं का न्यायसंगत समायोजन, प्रतिस्पर्धी योग्यता की आंशिक मान्यता के साथ-साथ कमजोरों की वास्तविक संभावना ही सामाजिक न्याय की गतिशीलता है जो संविधान के तीनों अनुच्छेदों को बराबर सजीव बनाती है । विद्वान् न्यायाधीश ने पैरा 23 में आगे यह मत व्यक्त किया कि समतावाद की उसी धारा से निकलने वाली एक अन्य परिसीमा है । किसी क्षेत्र की मूलभूत चिकित्सा आवश्यकताओं या अक्षम समूह के लिए न्यायोचित ठहराई गई अधिमानता विशेषज्ञता के उच्चतम मानदंडों में उसी परिमाप में अभिभावी नहीं हो सकती जहां श्रेष्ठ, कुशल या प्रतिभावान व्यक्तियों का चयन उनकी सक्षमता के अनुसार किया जाना चाहिए । विद्वान् न्यायाधीश ने भारतीय चिकित्सा परिषद् की उन सिफारिशों को निर्बंधित किया जिनमें यह उपदर्शित था कि स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों का चयन पूर्णतः योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए और इसका निर्णय स्नातकपूर्व पाठ्यक्रम में शैक्षणिक अभिलेख के आधार पर किया जाना चाहिए ।

10. श्री राव ने जिस अगले प्रश्न के प्रति निर्देश किया वह **डा. फज़ल गफूर** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में दिया गया एक संक्षिप्त निर्णय है जो कि दो न्यायाधीशों द्वारा दिया गया एक विनिश्चय था, जिसमें **डा. प्रदीप जैन और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया गया था जिसमें इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने संविधान की प्रस्तावना में अंतर्विष्ट भारत के नागरिकों की महत्वाकांक्षाओं के प्रकाश में आरक्षण के प्रश्न पर विचार करते समय यह मत व्यक्त किया था कि जबकि स्नातकपूर्व पाठ्यक्रम के संबंध में आरक्षण स्वीकार्य है किन्तु जब स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों, जैसे एम. डी., एम. एस. और इसी प्रकार के पाठ्यक्रमों में

---

[1] (1988) सप्ली. एस. सी. सी. 794.

प्रवेश के लिए राज्य के भीतर निवास की अपेक्षा या संस्थागत अधिमानता पर आधारित आरक्षण का प्रश्न उत्पन्न होता है तो इससे भिन्न विचारणाएं अभिभावी होंगी । माननीय न्यायालय ने **डा. जगदीश सरन** (उपर्युक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अनुसरण करते हुए यह मत व्यक्त किया कि हम उत्कृष्टता के संबंध में किसी अन्य विचारणा के साथ समझौता नहीं करने दे सकते क्योंकि ऐसा करना राष्ट्र के हित के लिए हानिकर होगा । माननीय न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि देश के प्रत्येक अन्य व्यक्ति के लिए अवसर की समानता कानूनी गारंटी है तो सर्वोत्तम का चयन करने के लिए योग्यता कसौटी होनी चाहिए ।

11. श्री राव ने अंत में **डा. प्रीति श्रीवास्तव** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जो कि एक ऐसी रिट याचिका थी जिसकी सुनवाई आरक्षण के विभिन्न पहलुओं के संबंध में अनेक अन्य रिट याचिकाओं के साथ की गई थी । श्री राव ने यह इंगित किया कि संविधान पीठ ने उसमें अभिव्यक्त मतों के साथ अपनी सहमति व्यक्त करते हुए इसमें इसके पूर्व निर्दिष्ट **डा. प्रदीप जैन** (उपर्युक्त) और **डा. जगदीश सरन** (उपर्युक्त) वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया । निर्णय के पैरा 25 में न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर ने संविधान पीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह मत व्यक्त किया कि आयुर्विज्ञान में स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी पाठ्यक्रमों में संबद्ध शिक्षण अस्पतालों में रोगियों का अपने हाथों से उपचार करने या आपरेशन करने का अनुभव होना भी आवश्यक होता है । इन कार्यक्रमों में शिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से शिक्षण अस्पतालों में पद धारित करने या ऐसे पदों से संबद्ध कर्तव्यों का निर्वहन करने की प्रत्याशा की जाती है । अतः, अनुच्छेद 335 के तत्व इन पाठ्यक्रमों के लिए अभ्यर्थियों के चयन और इस प्रयोजनार्थ विरचित नियमों को रंजित करते हैं । परिणामस्वरूप, पैरा 26 में यह भी मत व्यक्त किया गया था कि संक्षेप में अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों के अभ्यर्थियों के लिए विशेषज्ञता स्तर पर विशेष उपबंध - चाहे वे आरक्षण या निम्नतर अर्हक अंक के संबंध में हों - न्यूनतम होने चाहिएं । तथापि, सुपर-स्पेशियल्टीज़ के स्तर पर ऐसा कोई विशेष उपबंध नहीं हो सकता है । संविधान पीठ ने अपने निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए अंततः यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि चिकित्सा संस्थाओं में उच्चतम स्तरों पर कोई आरक्षण अनुज्ञेय नहीं है इसलिए याचियों का

---

[1] (1999) 7 एस. सी. सी. 120.

कहना सही था जब उन्होंने यह दलील दी कि डी. एम. और एम. सी. एच. पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए, जो कि सुपर-स्पेशियल्टी पाठ्यक्रम हैं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए किया गया आरक्षण अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के अधीन दी गई सांविधानिक आज्ञा से संगत नहीं हैं और यह कि स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, चंडीगढ़ विनियम, 1967 का विनियम 27 डी. एम. और एम. सी. एच. पाठ्यक्रमों में प्रवेश के स्तरों पर लागू नहीं होगा ।

12. श्री राव ने यह दलील दी कि स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति ने, जो कि लोकप्रिय रूप से भूरे समिति के रूप में जानी जाती है, वर्ष 1946 में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में दिल्ली में एक राष्ट्रीय आयुर्विज्ञान केन्द्र स्थापित करने की सिफारिश की थी जो सुर्हित अध्यापकों और अनुसंधान कामकाजियों को प्रशिक्षण देने में अपना ध्यान केन्द्रित करेगी जिससे कि संपूर्ण देश में द्रुत गति से बढ़ने वाले स्वास्थ्य क्रियाकलापों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उनकी एक स्थिर धारा बनाई जा सके । ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त रिपोर्ट के अनुसरण में और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संघ के स्वास्थ्य मंत्रालय ने उपर्युक्त विचार को कार्यान्वित करने की कार्यवाही आरंभ की जिसके परिणामस्वरूप अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया गया और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को राष्ट्रीय महत्व का एक स्वशासी संस्थान बनाया गया और उसके उद्देश्यों और कृत्यों को परिभाषित किया गया । श्री राव द्वारा इस बात पर जोर देने के लिए कि **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले तथा **प्रीति श्रीवास्तव** (उपर्युक्त) वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां बाध्यकारी नहीं थीं हालांकि वे निर्णयों में की गई मताभिव्यक्तियों की प्रकृति की थीं, विभिन्न अन्य विनिश्चयों के प्रति भी निर्देश किया गया था जिनमें **सौरभ चौधरी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] तथा **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] वाले विनिश्चय भी शामिल थे । श्री राव ने **आय-कर आयुक्त, हैदराबाद-डक्कन** बनाम **वज़ीर सुल्तान एंड संस**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने "इतरोक्ति" के सिद्धांत की परीक्षा की थी और यह निष्कर्ष निकाला था कि कई बार

[1] (2003) 11 एस. सी. सी. 146.

[2] (2002) 8 एस. सी. सी. 481.

[3] [1959] सप्ली. 2 एस. सी. आर. 375.

इतरोक्ति में भी संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि का बल होता है । श्री राव ने इस टिप्पणी के साथ अपनी बात समाप्त की कि स्पेशियल्टी और सुपर-स्पेशियल्टी विषयों में या एम्स के संकाय में नियुक्ति के लिए आरक्षण की संकल्पना आरंभ करने से वह प्रयोजन ही विफल हो जाएगा जिसके लिए संस्थान स्थापित किया गया था । श्री राव ने यह भी दलील दी कि यदि सुपर-स्पेशियल्टी विषयों के स्तर पर उत्कृष्टता प्राप्त की जानी है तो ऐसी शिक्षा प्रदान करने में या ऐसे व्यक्तियों की भर्ती करने में जो ऐसे स्तर पर ऐसी शिक्षा प्रदान करेंगे, कोई समझौता नहीं किया जा सकता था ।

13. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता डा. राजीव धवन ने, जो 2002 की सिविल अपील सं. 5119 में उपस्थित हुए थे, यह दलील दी कि एम्स अधिनियम शासी निकाय को किसी भी प्रक्रम पर, कम से कम सुपर-स्पेशियल्टी के प्रक्रम पर आरक्षण अधिरोपित करने के लिए सशक्त नहीं करता था । डा. धवन ने एम्स के निदेशक द्वारा फाइल किए गए शपथपत्र के प्रति निर्देश करते हुए यह दलील दी कि उच्च न्यायालय का विनिश्चय **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले तथा **एम. नागराज और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रतिकूल था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था किया कि सुपर-स्पेशियल्टी के स्तर पर कोई आरक्षण नहीं होना चाहिए और यह आरक्षण हर हालत में परिमाणनीय आंकड़ों पर आधारित होगा । श्री राव ने यह दलील दी कि उक्त दो मामलों के बावजूद वर्तमान मामले में आनुपातिक प्रतिनिधित्व न कि पर्याप्तता का, जैसा कि **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में या **एम. नागराज** (उपर्युक्त) वाले मामले में समझा गया है, अवलंब लिया गया है । डा. धवन ने क्रीमी लेयर की संकल्पना के प्रति निर्देश करते समय इस बात पर जोर दिया कि "समता" का यह अर्थ नहीं है कि ऐसी समता बनाए रखने के लिए आरक्षण प्रत्येक मामले में लागू किया जाना था, उदाहरणार्थ, क्रीमी लेयर की वह संकल्पना जिस पर इस न्यायालय द्वारा **ई. वी. चिन्नय्या** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में विचार किया गया था ।

14. संस्थान की ओर से उपस्थित होते हुए विद्वान् अधिवक्ता श्री महमूद प्राचा ने यह दलील दी कि प्रायः पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों

---

[1] (2006) 8 एस. सी. सी. 212.

[2] (2005) 1 एस. सी. सी. 394.

और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के साथ भेदभाव बरता जाता था और उत्कृष्ट योग्यता रखने के बावजूद विभिन्न चिकित्सा महाविद्यालयों और विशेषकर अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान द्वारा, जो कि राष्ट्रीय महत्व का एक संस्थान है, अपेक्षित मानकों पर खरा उतरने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किए गए थे । श्री प्राचा ने इस बात पर जोर दिया कि यद्यपि संस्थान के सभी विभिन्न स्तरों पर आरक्षण लागू किया गया था तथापि, काफी समय से यह दर्शित करने के लिए कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं कि एम्स में प्रदान की जा रही चिकित्सा सेवाओं की गुणवत्ता में कोई कमी आई है । दूसरी ओर, एम्स न केवल प्रोन्नति और अनुसंधान कार्य के लिए बल्कि चिकित्सा शिक्षा के प्रयोजन के लिए भी सबसे अधिक पसन्द किया जाने वाला चिकित्सा संस्थान है । श्री प्राचा ने हिन्दू पुराण से एक उदाहरण लेते हुए महाभारत में एकलव्य और अर्जुन की कथा से सादृश्यता दिखाई । जबकि अर्जुन का संबंध शाही वर्ग से था किन्तु एकलव्य एक जनजाति का लड़का था जिसने किसी गुरु से वास्तविक प्रशिक्षण और मार्गदर्शन प्राप्त किए बिना अपने ही प्रयासों से धनुर्विद्या में उत्कृष्टता प्राप्त की थी । प्रसिद्ध द्रोणाचार्य धनुर्विद्या में अर्जुन का गुरु था और एकलव्य के पास जो कौशल था वह उसने द्रोणाचार्य द्वारा अर्जुन को शिक्षा देते हुए देखने मात्र से प्राप्त किया था । तथापि, जब धनुर्विद्या में प्रतियोगिता हुई तब द्रोणाचार्य ने, जिसे लगभग पक्का विश्वास था कि यदि एकलव्य को अवसर दिया गया तो वह संभवतः अर्जुन को हरा देगा, एकलव्य से कहा कि यदि वह वास्तव में उसका सम्मान करता है तो उसे अपने गुरु को अपना दाहिना अंगूठा गुरुदक्षिणा के रूप में देना चाहिए । एकलव्य ने कर्तव्यनिष्ठा से उस व्यक्ति की आज्ञा का पालन किया जिसे उसने अपने गुरु के रूप में माना था और इस प्रकार उसे उस प्रतियोगिता में प्रतिस्पर्धा करने से निवारित किया गया था, जिसमें अर्जुन विजयी हुआ । श्री प्राचा ने यह दलील दी कि मात्र इस कारण कि एकलव्य एक जनजातीय लड़का था, उसे उसकी प्रतिभा और उत्कृष्टता के बावजूद अर्जुन से प्रतिस्पर्धा करने का अवसर देने से वंचित किया गया था । श्री प्राचा ने यह दलील दी कि आज के समाज में ऐसे अनेक एकलव्य हैं जिनका यदि दमन नहीं किया गया और एक अवसर दिया गया तो संभवतः वे समाज के उच्चतर वर्गों के प्रतियोगियों को मात दे देंगे ।

15. श्री प्राचा ने सभी प्रक्रमों पर आरक्षण की संकल्पना का बलपूर्वक समर्थन किया, जिसमें सुपर-स्पेशियल्टी प्रक्रम भी है । उसने इस बात पर जोर दिया कि ऐसे फैकल्टी पदों पर भर्ती के लिए प्रवेश स्तर पर, जिन

सभी को स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के पश्चात् सुपर-स्पेशियल्टी विधाओं के रूप में माना जाता है, पिछड़े वर्गों के सदस्य को आरक्षण के लिए कोई पृथक् महत्व दिए बिना अन्य अभ्यर्थियों के साथ एक परीक्षा में बैठना होता था । अन्य अभ्यर्थियों के साथ लिखित परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही पिछड़े वर्गों के किसी सदस्य को आरक्षण के आधार पर अध्यापन पद पर नियुक्त किया जाता था । श्री प्राचा ने यह दलील दी कि ऐसे अभ्यर्थी को उसके अन्य सहयोगी फैकल्टी सदस्यों के स्तर तक पहुंचने का अवसर प्रदान करने के आशय से ही ऐसा किया गया था । श्री प्राचा ने यह दलील दी कि इस छोटी सी सहायता देने का आशय पिछड़े समुदायों के लोगों को शिक्षण के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सहायता करना था जिससे कि समरूप स्थिति वाले अन्य व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जा सके । श्री प्राचा ने **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अपनी इस दलील के समर्थन में भी अवलंब लिया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के सदस्यों को पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था और उक्त प्रयोजन के लिए कतिपय मात्रा में आरक्षण आवश्यक था जिससे कि वे अन्य व्यक्तियों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें और शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकें । श्री प्राचा ने संस्थान द्वारा अपनाई गई नीति का बलपूर्वक समर्थन करते हुए यह दलील दी कि एम्स की फैकल्टी आफ एसोसिएशन द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की जानी चाहिए ।

16. भारत संघ की ओर से उपस्थित होते हुए विद्वान् महासालिसिटर ने श्री प्राचा द्वारा दी गई दलीलों को दोहराया और यह जोड़ा कि राज्य का यह सांविधानिक कर्तव्य है कि समाज के ऐसे कतिपय वर्गों को सशक्त किया जाए जिन्हें उनकी विशिष्ट स्थितियों से ऊपर उठाने के लिए सहायता की आवश्यकता है । विद्वान् महासालिसिटर ने यह दलील दी कि यद्यपि संविधान का अनुच्छेद 46 एक निदेशक तत्व है तथापि, वह तत्कालीन सरकार के लिए सुशासन के एक दिशानिर्देश के स्वरूप का है । उक्त अनुच्छेद का आशय ऐसे दलित वर्गों की सहायता करना था जिनके पास अन्यथा अपने स्तर को बढ़ाने का बहुत कम अवसर था । विद्वान् महासालिसिटर ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि केन्द्रीय सरकार ने आरंभ में कब शिक्षा में उत्कृष्टता के आधार पर आरक्षण के सिद्धांत का विरोध किया था और वर्ष 1972 में एक पृथक् आधार अपनाना क्यों आवश्यक हो गया था और सुपर-स्पेशियल्टी पाठ्यक्रमों में भी आरक्षण का

समर्थन किया था, इस बात पर जोर दिया कि यह नीति पर्याप्तता के प्रश्न पर आधारित नहीं थी बल्कि पिछड़े वर्गों के सशक्तीकरण के अध्युपाय के रूप में थी । **एम. नागराज** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश करते समय, जिसके प्रति अन्य विद्वान् काउन्सेलों द्वारा निर्देश किया गया है । विद्वान् महासालिसिटर ने यह दलील दी कि संविधान में अनुच्छेद 16(4क) के पुरःस्थापन से **एम. नागराज** (उपर्युक्त) वाले मामले में निकाले गए निष्कर्ष को पृथक् रूप से पढ़ना होगा । तथापि, उसने इस बात पर भी जोर दिया कि आरक्षण अधिरोपित करने के संबंध में कोई सांविधानिक प्रतिषेध नहीं है यदि उसे ऐसे पिछड़े वर्गों के फायदे के लिए आवश्यक समझा जाता है जिनके पास अपना भाग्य संवारने में सहायता करने के लिए बहुत कम या बिल्कुल भी समर्थन नहीं है । विद्वान् महासालिसिटर ने **डा. जगदीश सरन** (उपर्युक्त) वाले मामले और **डा. प्रदीप जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति निर्देश करते हुए जिनका इसमें इसके ऊपर उल्लेख किया गया है, इस बात पर जोर दिया कि **डा. प्रदीप जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह निदेश देते समय कि आरक्षण 70 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए, संविधान के अनुच्छेद 16(4क) को विचार में नहीं लिया गया था ।

17. यद्यपि इस मामले पर कुछ विस्तार से विचार-विमर्श किया गया है तथापि, सुपर-स्पेशियल्टी स्तर पर आरक्षण के संबंध में उठाए गए मुख्य मुद्दे पर **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा पहले ही विचार किया गया है । इस विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, हम इस मुद्दे पर नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अभिव्यक्त मत से भिन्न मत अपनाना नहीं चाहते हैं । **डा. जगदीश सरन** (उपर्युक्त) और **डा. प्रदीप जैन** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों के अलावा यह मुद्दा **प्रीति श्रीवास्तव** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी विचारार्थ उद्‌भूत हुआ था जिसका विनिश्चय भी पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किया गया था । जबकि **डा. जगदीश सरन** (उपर्युक्त) वाले मामले और **डा. प्रदीप जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि सुपर-स्पेशियल्टी स्तर पर योग्यता के संबंध में कोई समझौता नहीं हो सकता था **प्रीति श्रीवास्तव** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी यही भावनाएं व्यक्त की गई थीं । **प्रीति श्रीवास्तव** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ को स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, चंडीगढ़ विनियम, 1967 के विनियम 27 पर विचार करने का अवसर मिला जिसमें संस्थान में

प्रत्येक पाठ्यक्रम में 20 प्रतिशत स्थान समय-समय पर प्रख्यापित केन्द्रीय सरकार के साधारण नियमों के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों या अन्य प्रवर्गों के व्यक्तियों के लिए आरक्षित रखे जाने थे । संविधान पीठ ने यह निष्कर्ष निकाला कि विनियम 27 सुपर-स्पेशियल्टी के उच्चतर स्तर पर लागू नहीं किया जा सकता था क्योंकि इससे ऐसे चयनित प्रतिभावान अभ्यर्थियों को, जो चिकित्सा अनुसंधान और उसके उपयोजन के क्षेत्र में ज्ञान के संवर्धन में योगदान कर सकते थे, सर्वोत्तम संभावित प्रशिक्षण प्रदान करने का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा । माननीय न्यायालय ने अंततः यह अभिनिर्धारित किया कि सुपर-स्पेशियल्टी स्तर पर किसी प्रकार की शिथिलता प्रदान नहीं की जा सकती है ।

18. **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के पैरा 836 में यह मत व्यक्त किया गया था कि जबकि आरंभिक भर्ती के प्रक्रम पर योग्यता की संगतता और महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता है किन्तु इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि आरक्षण के उसी विचार को लागू करने से कम प्रतिभावान व्यक्ति का चयन विवक्षित होता है । यह भी मत व्यक्त किया गया था कि इसके साथ-साथ यदि सामाजिक न्याय के सांविधानिक वचन को छोड़ा जाना है तो ऐसी कीमत चुकानी होगी । तथापि, ऐसे सुझाव देने के पश्चात् अगले ही पैरा में संविधान के अनुच्छेद 15 के प्रकाश में एक चेतावनी दी गई थी । तथापि, अनुच्छेद 16 के उपबंधों के संबंध में एक विभेद किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 335 सुसंगत होगा और कोई भी न्यूनतम मानदंड विहित न करना अनुज्ञेय नहीं होगा । निस्संदेह, उक्त मताभिव्यक्ति चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश के संदर्भ में की गई थी और **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **निवेदिता जैन**[1] वाले मामले में के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया गया था जहां चिकित्सा पाठ्यक्रमों में प्रवेश किसी प्रवेश परीक्षा द्वारा विनियमित होता था । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चिकित्सा अधिकारियों की नियुक्ति के मामले में सरकार या लोक सेवा आयोग यह कहने के हकदार नहीं होंगे कि अन्य व्यक्तियों के न्यूनतम अंक विहित करते समय अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए न्यूनतम अर्हक अंक नहीं होंगे । नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अगले ही पैरा में

[1] (1981) 4 एस. सी. सी. 296.

अनुच्छेद 335 के उपबंधों पर विचार-विमर्श करते हुए यह भी मत व्यक्त किया कि ऐसी कतिपय सेवाएं और पद हैं जहां या तो उनसे सहबद्ध कर्तव्यों की प्रकृति के कारण या पदानुक्रम के उस स्तर के कारण जहां वे होते हैं, केवल योग्यता ही महत्वपूर्ण होती है । ऐसी स्थितियों में, आरक्षण के लिए उपबंध करने की सलाह नहीं दी जा सकती है । अगले पैरा में, यह स्थिति और भी स्पष्ट कर दी गई थी जब माननीय न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि उसकी यह राय है कि कतिपय पदों की बाबत कतिपय सेवाओं में विभिन्न तकनीकी पदों के संबंध में आरक्षण के नियम को लागू करना उपयुक्त नहीं हो सकता है जिनमें आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी और अन्य वैज्ञानिक और तकनीकी पदों में सुपर-स्पेशियल्टी में के पद भी शामिल हैं ।

19. हम इससे भिन्न दृष्टिकोण नहीं अपना सकते हैं, यद्यपि यह सुझाव दिया गया है कि ऐसी मताभिव्यक्ति बाध्यकारी नहीं है क्योंकि यह एक इतरोक्ति प्रकृति की है । हम इस मत का समर्थन नहीं कर सकते हैं चूंकि आरक्षण की संकल्पना से ही सामान्य योग्यता विवक्षित होती है और हमें **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में उपदर्शित चेतावनी को ध्यान में रखना होगा । हम **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अभिव्यक्त मतों को दोहराते हुए उक्त मतों के प्रकाश में दोनों सिविल अपीलों का निपटारा करते हैं जो कि **डा. जगदीश सरन** (उपर्युक्त), **डा. प्रदीप जैन** (उपर्युक्त) और **डा. प्रीति श्रीवास्तव** (उपर्युक्त) वाले मामलों में भी व्यक्त किए गए थे । हम केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को **इंदिरा साहनी** (उपर्युक्त) वाले मामले और इस मामले में तथा ऊपर निर्दिष्ट अन्य विनिश्चयों में भी अभिव्यक्त मतों के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 335 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए समुचित कदम उठाने पर जोर देते हैं ।

20. खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलों का तदनुसार निपटारा किया गया ।

ग्रो.

रामचन्द्र

बनाम

क्षेत्रीय प्रबंधक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

2 अगस्त, 2013

न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी और न्यायमूर्ति (श्रीमती) ज्ञान सुधा मिश्रा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 168, धारा 147 और धारा 95 – प्रतिकर – दुर्घटनाग्रस्त यान के स्वामी के कर्मचारी की हकदारी – ऐसे यान के, जिससे दुर्घटना कारित होती है, स्वामी के कर्मचारी को संदेय प्रतिकर केवल कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन निर्बंधित नहीं किया जा सकता है बल्कि वह मोटर यान अधिनियम के अधीन भी प्रतिकर का हकदार हो सकता है बशर्ते बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों में ऐसा उपबंधित हो ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 168 और धारा 147 – प्रतिकर – दुर्घटनाग्रस्त यान के स्वामी के कर्मचारी द्वारा प्रतिकर के लिए दावा – बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के बीच प्रभाजन – यदि बीमा कंपनी अधिकरण और उच्च न्यायालय के समक्ष बीमाकृत-स्वामी की अनुपस्थिति में भी कार्यवाही अनुज्ञात करती है और यह अभिवाक् नहीं करती कि पालिसी में कोई अतिरिक्त प्रीमियम संदत्त न किए जाने के कारण उसका दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व तक सीमित है तो इसके परिणाम भी उसे भुगतने होंगे और उच्च न्यायालय का यह निदेश न्यायोचित नहीं होगा कि बीमाकर्ता केवल कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 168 – दावा कार्यवाहियां – बीमाकर्ता को यह दावा करने के लिए कि अंशतः/संपूर्ण दायित्व बीमाकृत व्यक्ति का है अधिकरण के समक्ष ही साक्ष्य पेश करना चाहिए और बीमाकृत व्यक्ति की उपस्थिति पर भी जोर देना चाहिए जिससे पश्चात्‌वर्ती कार्यवाहियों में, जब बीमाकर्ता संदत्त प्रतिकर की वसूली के लिए बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करता है इस मामले का समाधान सुकर बन जाएगा ।

प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी/दावेदार ने एक दावा याचिका फाइल की थी जिसमें उसने एक ऐसी सड़क यातायात दुर्घटना में उसे कारित हुई क्षतियों के लिए प्रतिकर का दावा किया था, जब दावेदार एक मैटाडोर में क्लीनर के रूप में यात्रा कर रहा था । दावेदार के अनुसार यान के चालक ने उसे अंधाधुंध और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया और उक्त यान की टक्कर एक लॉरी से हो गई जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी को, जो उक्त यान में क्लीनर के रूप में यात्रा कर रहा था, गंभीर क्षतियां कारित हुईं । इसलिए, क्षतिग्रस्त व्यक्ति को प्राथमिक उपचार चिकित्सा के लिए सरकारी अस्पताल में ले जाया गया और बाद में उसे विक्टोरिया अस्पताल, बंगलौर में अंतःरोगी के रूप में स्थानांतरित कर दिया गया था । दावेदार ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण और लघु वाद न्यायालय के समक्ष बीमाकर्ता और यान के स्वामी दोनों के विरुद्ध दावा किया । प्रत्यर्थी सं. 1-बीमा कंपनी उपस्थित हुई और उसने यह दलील देते हुए आक्षेप फाइल किए कि यान को अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करते हुए विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति के बिना चलाया जा रहा था जिसके कारण बीमा कंपनी से किसी प्रकार का प्रतिकर संदत्त करने की अपेक्षा नहीं थी । बीमा कंपनी द्वारा आगे यह दलील दी गई थी कि प्रश्नगत यान यात्री-वहन यान है और जारी की गई बीमा पालिसी जोखिम-ग्रहण (कवरेज) का ऐसा कार्य था जिसमें दावेदार अपीलार्थी क्लीनर के रूप में कार्यवाही कर रहा था । अतः प्रत्यर्थी द्वारा जारी की गई बीमा पालिसी के अंतर्गत मोटर यान अधिनियम की धारा 147 के अनुसार क्लीनर का जोखिम नहीं आता है चूंकि दुर्घटना वाले यान को कवर करने वाली बीमा पालिसी कवरेज का कार्य होने के कारण उसमें क्लीनर का जोखिम नहीं आता है; अतः, प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी नहीं थी । प्रत्यर्थी सं. 2/प्रस्तुत मामले में यान के स्वामी को यद्यपि नोटिस की तामील की गई थी तथापि, वह अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने में असफल रहा और इसलिए केवल प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी के विरुद्ध मामला चलाया गया था । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की संवीक्षा और विश्लेषण करने और अपीलार्थी/दावेदार को पहुंची क्षति और उपचार पर उपगत व्ययों का निर्धारण करने पर यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार प्रतिकर के मद्धे 1,42,800/- रुपए की रकम का हकदार है । प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी की ओर से दी गई चुनौती का प्रमुख आधार यह था कि अपीलार्थी मैटाडोर वैन में क्लीनर के रूप में यात्रा कर रहा था;

इसलिए उसका उपचार कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा करना था और अधिकरण को क्लीनर द्वारा फाइल किए गए दावे को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी बीमाकर्ता है इसलिए वह प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी है । परिणामस्वरूप, दावा याचिका भागतः मंजूर की गई थी और प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी और प्रत्यर्थी-बीमाकृत/यान के स्वामी के विरुद्ध संयुक्ततः और पृथक्‌तः खर्चे तथा दावा याचिका फाइल करने की तारीख से संदाय किए जाने की तारीख तक 6 प्रतिशत ब्याज सहित 1,42,800/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था । तथापि, प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी दोषी यान का बीमाकर्ता होने के कारण उसे अधिनिर्णीत समस्त प्रतिकर का संदाय करने का आदेश किया गया था । प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी ने उच्च न्यायालय में प्रथम अपील फाइल करके, अधिकरण के निर्णय और आदेश को चुनौती दी जिसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह लेखबद्ध किया कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी की एकमात्र शिकायत यह थी कि दावा याचिका मंजूर करते समय प्रथम प्रत्यर्थी/दावेदार ने दावेदार को अधिनिर्णीत 1,42,800/- रुपए की रकम की तुष्टि करने का समस्त भार अपीलार्थी पर डाला । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस अपील को लगभग संक्षेप में मंजूर कर लिया था क्योंकि उसका यह मत था कि चूंकि दावेदार प्रस्तुत अपीलार्थी के पास बीमाकृत मैटाडोर वैन में क्लीनर था इसलिए दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व से अधिक नहीं हो सकता था । इसलिए, एकल न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि बीमा कंपनी का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व तक निर्बंधित था जो कि 32,091/- रुपए तक होगा और शेष दायित्व का वहन बीमाकृत/यान के स्वामी द्वारा किया जाना होगा । इसके अतिरिक्त यह आदेश किया गया था कि ब्याज की दर मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के आदेश के अनुसार होगी । यह अपील इस सीमा तक मंजूर की गई थी किन्तु इसके अलावा यह निदेश दिया गया था कि यदि अधिक रकम जमा कराई गई थी तो उसका बीमा कंपनी को प्रतिदाय किया जाएगा । चूंकि बीमाकृत/यान का स्वामी अधिकरण या उच्च न्यायालय के समक्ष कभी भी उपस्थित नहीं हुआ इसलिए दावेदार-अपीलार्थी व्यथित हुआ और उसने इस न्यायालय में अपील फाइल की जिसमें उच्च न्यायालय के उस निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण का

संबंध है कि प्रतिकर केवल उस सीमा तक संदत्त किए जाने के लिए निर्बंधित होगा जो कि व्यापक सामान्यीकरण द्वारा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन संदेय है, यह इस न्यायालय द्वारा उस निर्णय और आदेश में अपनाए गए दृष्टिकोण से भी स्पष्ट रूप से प्रतिकूल है, जिसका अवलंब प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी के काउन्सेल द्वारा लिया गया है, क्योंकि इसमें पर्याप्त रूप से स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में अधिकथित है कि कर्मचारी को संदेय प्रतिकर को मात्र कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन निर्बंधित नहीं किया जा सकता है और इसे विस्तारित किया जा सकता है बशर्ते उस संविदागत दस्तावेज़ में, जो कि बीमा पालिसी है, पालिसी के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए संदत्त किए जाने वाले प्रीमियम के संबंध में ऐसा खंड सम्मिलित हो । दावेदार/अपीलार्थी निश्चित रूप से कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर से अधिक प्रतिकर की रकम का हकदार है । निस्संदेह, शर्त यह है कि कानूनी दायित्व उस दायित्व से अधिक नहीं हो सकता है जो मोटर यान अधिनियम की धारा 95 के अधीन कानून के अधीन अपेक्षित है जो पक्षकारों को व्यापक जोखिम शामिल करने के लिए असीमित या उच्चतर दायित्व की संविदा करने या उसका सृजन करने के लिए बाध्य या प्रतिषिद्ध नहीं कर सकता है और बीमाकृत व्यक्ति यथास्थिति, असीमित या उच्चतर दायित्व के संबंध में पालिसी में विनिर्दिष्ट संविदा के निबंधनों से आबद्ध होता है । अतः, यद्यपि यह सही है कि सीमित कानूनी दायित्व को असीमित या उच्चतर बनाने तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है तथापि, यह भी प्रत्यक्षतः स्पष्ट है कि जहां तक दावेदार/यान के मृत क्लीनर की हकदारी का संबंध है, उसे कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर तक निर्बंधित नहीं किया जा सकता है और वह मोटर यान अधिनियम के अधीन भी प्रतिकर के लिए हकदार है जो कि बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों पर निर्भर करेगा । (पैरा 18 और 20)

यदि बीमा कंपनी ने बीमाकृत व्यक्ति/यान के स्वामी की अनुपस्थिति में भी कार्यवाही अनुज्ञात की थी, जिसे रकम का संदाय करने के लिए दायी ठहराया गया है हालांकि बीमाकृत व्यक्ति उच्चतर प्रीमियम का संदाय करने के लिए दायी हो सकता था, इसके परिणाम स्पष्ट रूप से बीमा कंपनी को भुगतने होंगे और दावेदार को नुकसान उठाने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के प्रक्रम पर बीमा कंपनी को 32,091/- रुपए से अधिक प्रतिकर की रकम की वसूली बीमाकृत व्यक्ति/स्वामी से करने की स्वतंत्रता

देने में कोई विधिक न्यायौचित्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यद्यपि प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी का अभिवाक् यह था कि दावेदार कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व की सीमा से परे किसी प्रकार के प्रतिकर का हकदार नहीं है और प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी ने न तो अधिकरण के समक्ष और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष यह अनुकल्पी अभिवाक् किया है कि यदि दावेदार को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व की सीमा से परे प्रतिकर के लिए हकदार ठहराया जाता है तो वह इसलिए संदेय नहीं था क्योंकि बीमाकृत व्यक्ति/स्वामी द्वारा बीमा पालिसी के अधीन कोई अतिरिक्त प्रीमियम संदत्त नहीं किया गया था । बीमा कंपनी निचले न्यायालयों, अर्थात् या तो मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण या उच्च न्यायालय के समक्ष कोई अभिवाक् करने में असफल रही है और उसने यह दलील भी नहीं दी थी कि यदि दावेदार कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन संदेय प्रतिकर से परे किसी प्रतिकर का हकदार हो जाता है तो बीमाकृत स्वामी ही उसका संदाय करने के लिए दायी था क्योंकि उसका कोई संविदागत दायित्व नहीं था चूंकि बीमाकृत व्यक्ति/यान के स्वामी ने कोई अतिरिक्त प्रीमियम संदत्त नहीं किया था । इस प्रकार, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा इस अभिवाक् की कभी भी परीक्षा नहीं की गई थी चूंकि बीमा कंपनी ने न तो यह अभिवाक् लिया और न ही इस संबंध में कोई साक्ष्य पेश किया जिससे कि उच्च न्यायालय को बीमा कंपनी के इस अभिवाक् को सीधे ही अपील के प्रक्रम पर स्वीकार करने का कोई कारण मिल सके । परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय का यह मत कायम रखे जाने योग्य नहीं है जिसमें विवक्षित रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दावेदार/अपीलार्थी कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन हकदारी से परे मोटर यान अधिनियम के अधीन किसी प्रतिकर का हकदार नहीं था जिससे कि प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी को उसे उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर यान के स्वामी से वसूल करने की स्वतंत्रता दी जा सके जब कि प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी यान के स्वामी द्वारा अतिरिक्त प्रीमियम का संदाय न किए जाने के संबंध में अनुकल्पी अभिवाक् करने में असफल रही है और इस तथ्य से भी संतुष्ट हो गई थी कि यान का स्वामी सूचना की तामील के बावजूद भी उपस्थित होने में असफल रहा था । (पैरा 22, 23 और 24)

यद्यपि बीमा कंपनियां मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष और अपील के प्रक्रम पर भी यह दलील देती हैं कि पालिसी की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए या यान के स्वामी के चालक द्वारा अविधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने के कारण यान का स्वामी ही दावेदार को प्रतिकर का संदाय

करने संबंधी अंशतः या संपूर्ण दायित्व का वहन करने के लिए दायी होता है तथापि, बीमा कंपनी यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य पेश करने में असफल रहती हैं कि स्वामी न कि बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए किस प्रकार दायी है और वह यान के स्वामी की अनुपस्थिति भी स्वीकार कर लेती है जिसकी उपस्थिति यान के स्वामी और बीमा कंपनी के बीच परस्पर-विरोध को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण होती है । वास्तव में, यदि बीमा कंपनी को आरंभिक प्रक्रम पर अधिकरण के समक्ष अकाट्य साक्ष्य पेश करके यह साबित करने में सफल होना था कि यान का स्वामी ही संदाय करने के लिए दायी है भले ही साक्ष्य एकपक्षीय प्रकृति का क्यों न हो, तो वह पश्चात्वर्ती कार्यवाही में कम से कम इस मुद्दे को सुकर बनाएगा जब बीमाकर्ता स्वामी/बीमाकृत व्यक्ति से रकम की वसूली के लिए कार्यवाही संस्थित करता है । किन्तु ऐसे साक्ष्य के अभाव में बीमाकर्ता/कंपनियों को नुकसान होता है और वे स्वामी को लाभ सुनिश्चित करती हैं जो उपस्थित न होने का विकल्प अपनाकर लाभकर स्थिति में होता है । बीमा कंपनियां तब बेहतर स्थिति में होंगी यदि वे अपील के प्रक्रम पर बुद्धिमान बनने की बजाय स्वयं अधिकरण के समक्ष इस मुद्दे को उठाती हैं । जिस बात पर जोर देने की ईप्सा की जाती है वह यह है कि यदि स्वामी अधिकरण के समक्ष उपस्थित न होने का विकल्प अपनाता है हालांकि किसी विशिष्ट मामले में उसकी उपस्थिति आवश्यक है तो बीमा कंपनी के लिए यह बेहतर होगा कि वह स्वयं के लिए हानिकर उनकी अनुपस्थिति से उपमत न हो जिससे कि स्वामी उनके अपने जोखिम के कारण बेहतर स्थिति में न हों । (पैरा 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) ए. सी. जे. 50 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लगमन्ना और अन्य** ;	11
[2005]	(2005) 6 एस. सी. सी. 172 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रेमबाई पटेल और अन्य** ;	15
[2003]	आई. एल. आर. 2003 कर्नाटक 3562 : **कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य**	

	बनाम **आर. महेश्वरी और अन्य ;**	9
[2002]	(2002) 3 एस. सी. सी. 278 : **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **सी. एम. जया और अन्य ;**	15
[1998]	(1998) 3 एस. सी. सी. 744 : **अमृत लाल सूद** बनाम **कौशल्या देवी थापर ;**	15
[1996]	(1996) ए. सी. जे. 1 : **सुरेश चन्द्र** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ;**	2,13
[1995]	(1995) 2 एस. सी. सी. 539 : **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **शांति बाई और अन्य ;**	15
[1994]	(1994) 2 एस. सी. सी. 176 : **महाप्रबंधक, केरल राज्य सड़क परिवहन निगम, त्रिवेन्द्रम** बनाम **सुसम्मा थामस ।**	15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 8725.

2004 की प्रकीर्ण प्रथम अपील सं. 6711 (मोटर यान) में कर्नाटक उच्च न्यायालय की बंगलौर न्यायपीठ के तारीख 17 अप्रैल, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वी. एन. रघुपति

प्रत्यर्थी की ओर से श्री पी. आर. सिक्का

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) ज्ञान सुधा मिश्रा ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) मिश्रा – 2004 की प्रकीर्ण प्रथम अपील सं. 6711 (मोटर यान) में कर्नाटक उच्च न्यायालय की बंगलौर न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 17 अप्रैल, 2007 का निर्णय और आदेश इस अपील में चुनौती की विषयवस्तु है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी सं. 1-यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा उसके क्षेत्रीय प्रबंधक के माध्यम से फाइल की गई अपील मंजूर कर ली थी और उसमें यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रतिकर संदत्त करने के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 1-यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (जिसे इसमें इसके पश्चात् "बीमा कंपनी" कहा गया है) का दायित्व कर्मकार

प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन दायित्व तक निर्बंधित है और वह रकम जिसका संदाय करने के लिए प्रस्तुत प्रत्यर्थी सं. 1 दायी होगा, 32,091/- रुपए (केवल बत्तीस हजार इक्कानवे रुपए) है और शेष रकम यान के बीमाकृत-स्वामी द्वारा वहन की जानी होगी जिसे अपीलार्थी/दावेदार द्वारा इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 2 के रूप में आलिप्त किया गया था किन्तु जिसका नाम इस न्यायालय द्वारा प्रस्तुत अपीलार्थी/दावेदार के जोखिम पर पक्षकारों की सूची में से हटाने की अनुज्ञा दी गई थी । इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि बीमा कंपनी-प्रत्यर्थी सं. 1 का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन दायित्व तक निर्बंधित है और इसलिए वह मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन कोई प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी नहीं था ।

2. अतः, इस अपील में विधि का सारवान् प्रश्न इस प्रश्न का अवधारण करने तक सीमित है कि क्या उच्च न्यायालय का विद्वान् एकल न्यायाधीश आक्षेपित आदेश पारित कर सकता था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब ऐसे यान के चालक की उपेक्षा के कारण, जिसने दुर्घटना कारित की है, श्रमिक/कर्मचारी नियोजन के सम्यक् अनुक्रम में क्षतिग्रस्त होता है तब क्या प्रतिकर उस रकम तक सीमित किया जा सकेगा जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय है या क्या मोटर यान अधिनियम के अधीन भी प्रतिकर संदेय होगा ? अपीलार्थी/दावेदार ने **सुरेश चन्द्र** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के विनिश्चयाधार का विशेष रूप से अवलंब लेते हुए यह प्रश्न उठाया है जिसमें इस माननीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जब श्रमिक को अपने नियोजन के सम्यक् अनुक्रम में ऐसे चालक की उपेक्षा के कारण जिसने दुर्घटना कारित की है, क्षति कारित होती है और मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा किया जाता है तब प्रतिकर उस रकम तक सीमित नहीं किया जा सकता है जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय है ।

3. उन सुसंगत तथ्यात्मक ब्यौरों से, जिनके कारण इस अपील में उपर्युक्त प्रश्न उद्भूत हुआ है, यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी/दावेदार ने एक दावा याचिका फाइल की थी जिसमें उसने एक ऐसी सड़क यातायात दुर्घटना में उसे कारित हुई क्षतियों के लिए प्रतिकर का दावा किया था,

---

[1] (1996) ए. सी. जे. 1.

जो तारीख 10 सितम्बर, 1996 को लगभग 4.00 बजे अपराह्न में तब हुई थी जब दावेदार रजिस्ट्रेशन सं. केए-01-2337 वाले स्वराज माजदा मैटाडोर में क्लीनर के रूप में यात्रा कर रहा था । दावेदार के पक्षकथन के अनुसार यान के चालक ने उसे अंधाधुंध और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया और जब उक्त यान डोडाबंदे क्रासिंग के समीप पहुंचा तो उस यान की टक्कर रजिस्ट्रेशन सं. टीएन-28बी-8397 वाले लॉरी से हो गई जो कि सड़क पर खड़ी हुई थी जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी को, जो उक्त यान में क्लीनर के रूप में यात्रा कर रहा था, गंभीर क्षतियां कारित हुईं । इसलिए, क्षतिग्रस्त व्यक्ति को प्राथमिक उपचार चिकित्सा के लिए पेनुकोंडा सरकारी अस्पताल में ले जाया गया और बाद में उसे विक्टोरिया अस्पताल, बंगलौर में अंतःरोगी के रूप में स्थानांतरित कर दिया गया था । इस अपील में द्वितीय प्रत्यर्थी श्री एस. सत्यमूर्ति था, जो कि स्वीकृत रूप से स्वराज माजदा यान का स्वामी है और उक्त यान प्रस्तुत प्रथम प्रत्यर्थी, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के पास बीमाकृत था । अतः, दावेदार ने बंगलौर में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण और लघु वाद न्यायालय के समक्ष दोनों प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दावा किया जिसमें उसने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्यर्थी न्यायसंगत और पर्याप्त प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी हैं ।

4. प्रत्यर्थी सं. 1-बीमा कंपनी उपस्थित हुई और उसने यह दलील देते हुए आक्षेप फाइल किए कि यान को अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करते हुए विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति के बिना चलाया जा रहा था जिसके कारण बीमा कंपनी से किसी प्रकार का प्रतिकर संदत्त करने की अपेक्षा नहीं थी । बीमा कंपनी द्वारा इसके आगे यह दलील दी गई थी कि प्रश्नगत यान यात्री-वहन यान है और जारी की गई बीमा पालिसी जोखिम-ग्रहण (कवरेज) का ऐसा कार्य था जिसमें दावेदार अपीलार्थी क्लीनर के रूप में कार्य कर रहा था । अतः प्रत्यर्थी द्वारा जारी की गई बीमा पालिसी के अंतर्गत मोटर यान अधिनियम की धारा 147 के अनुसार क्लीनर का जोखिम नहीं आता है चूंकि दुर्घटना वाले यान को कवर करने वाली बीमा पालिसी कवरेज का कार्य होने के कारण उसमें क्लीनर का जोखिम नहीं आता है; अतः, प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी नहीं थी । इसलिए, प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी ने दावा याचिका को खारिज करने की ईप्सा की ।

5. प्रत्यर्थी सं. 2-प्रस्तुत मामले में यान के स्वामी को यद्यपि नोटिस की तामील की गई थी तथापि, वह अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने में

असफल रहा और इसलिए केवल प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी के विरुद्ध मामला चलाया गया था ।

6. मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की संवीक्षा और विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष लेखबद्ध किया कि अपीलार्थी/दावेदार मैटाडोर में यात्रा कर रहा था और उसके चालक द्वारा उक्त वैन को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रूप से चलाने के कारण अपीलार्थी को गंभीर क्षतियां कारित हुईं । साक्ष्य के आधार पर यह भी लेखबद्ध किया गया था कि अपीलार्थी को दाईं अस्थिकांड (शाफ्ट) ऊर्विका में अस्थिभंग हुआ था । वह डेढ़ मास की अवधि के लिए विक्टोरिया अस्पताल में अंतःरोगी था जहां उसकी टांग का आपरेशन किया गया था और विभंजित हड्डी में राड लगाई गई थी, सिर पर पहुंची क्षति पर टांके लगाए गए थे और उसका संरक्षी उपचार किया गया था । अस्पताल से छुट्टी के पश्चात् उसे डाक्टरों के परामर्श पर एक वर्ष की अवधि तक 15 दिनों में एक बार अनुवर्ती उपचार भी कराना पड़ा । अधिकरण ने दावेदार को पहुंची क्षति और उपचार पर उपगत व्ययों का निर्धारण करने पर यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार प्रतिकर के मद्धे 1,42,800/- रुपए की रकम का हकदार है ।

7. चूंकि इस अपील में प्रतिकर की मात्रा को चुनौती नहीं दी गई है इसलिए क्षति की प्रकृति और दावेदार को अधिनिर्णीत रकम के ब्यौरों की परीक्षा करना अनावश्यक है । इसके अलावा, बीमा कंपनी के इस अभिवाक् को भी अधिकरण ने खारिज कर दिया था कि चालक विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण नहीं किए हुए था और इस निष्कर्ष को भी चुनौती नहीं दी गई है और इसलिए इस पहलू पर विचार करना भी अनावश्यक है ।

8. प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी की ओर से दी गई चुनौती का प्रमुख आधार यह था कि अपीलार्थी मैटाडोर वैन में क्लीनर के रूप में यात्रा कर रहा था; इसलिए उसका उपचार कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा करना था और अधिकरण को क्लीनर द्वारा फाइल किए गए दावे को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी ।

9. तथापि, अधिकरण ने कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा **कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य** बनाम **आर. महेश्वरी और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि के प्रति निर्देश किया जिसमें

---

[1] आई. एल. आर. 2003 कर्नाटक 3562.

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि बीमाकर्ता ऐसे किसी दायित्व की बाबत, जो तात्पर्यित रूप से पालिसी के अंतर्गत आता है, ऐसे दायित्व का कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन पहले निर्धारण या न्यायनिर्णयन किए बिना मोटर यान अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों में भी पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों की क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी होगा । इस विनिश्चय के विनिश्चयाधार को ध्यान में रखते हुए अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी बीमाकर्ता है इसलिए वह प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी है । परिणामस्वरूप, दावा याचिका भागतः मंजूर की गई थी और प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी और प्रत्यर्थी-बीमाकृत/यान के स्वामी के विरुद्ध सयुक्ततः और पृथक्तः खर्चे तथा दावा याचिका फाइल करने की तारीख से संदाय किए जाने की तारीख तक 6 प्रतिशत ब्याज सहित 1,42,800/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया था । तथापि, प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी दोषी यान का बीमाकर्ता होने के कारण उसे अधिनिर्णीत समस्त प्रतिकर का संदाय करने का आदेश किया गया था ।

10. प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी ने कर्नाटक उच्च न्यायालय की न्यायपीठ में प्रथम अपील फाइल करके, जो कि 2004 की प्रकीर्ण प्रथम अपील सं. 6711/2004 है, अधिकरण के निर्णय और आदेश को चुनौती दी जिसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह लेखबद्ध किया कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी की एकमात्र शिकायत यह थी कि दावा याचिका मंजूर करते समय प्रथम प्रत्यर्थी/दावेदार ने दावेदार को अधिनिर्णीत 1,42,800/- रुपए की रकम की तुष्टि करने का समस्त भार अपीलार्थी पर डाला । बीमा कंपनी का प्रतिनिधित्व करने वाले काउन्सेल ने उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी कि इस संबंध में विवाद नहीं था कि दावेदार प्रश्नगत मैटाडोर वैन में क्लीनर के रूप में यात्रा कर रहा था और इसलिए अपीलार्थी का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन निर्बंधित किया जाना चाहिए था । इसलिए, अधिकरण का आदेश कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व से अधिक दायित्व तक विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता था ।

11. उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस अपील को लगभग संक्षेप में मंजूर कर लिया था क्योंकि उसका यह मत था कि चूंकि दावेदार प्रस्तुत अपीलार्थी के पास बीमाकृत मैटाडोर वैन में क्लीनर था इसलिए दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व से अधिक

नहीं हो सकता था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपने मत के समर्थन में **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लगमन्ना और अन्य**[1] वाले मामले में प्रतिवेदित निर्णय और आदेश का अवलंब लिया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिलिखित किया कि खंड न्यायपीठ ने उक्त विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया था कि जब बृहत्तर दायित्व को कवर करने के लिए कोई कवर प्रीमियम संदत्त नहीं किया जाता है वहां बीमा कंपनी का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व तक निर्बंधित होगा । इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसी स्थापित विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अधिकरण संपूर्ण दायित्व अपीलार्थी पर नहीं डाल सकता था । इसलिए, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि बीमा कंपनी का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व तक निर्बंधित था जो कि 32,091/- रुपए तक होगा और शेष दायित्व का वहन बीमाकृत/यान के स्वामी द्वारा किया जाना होगा । इसके अतिरिक्त यह आदेश किया गया था कि ब्याज की दर मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के आदेश के अनुसार होगी । यह अपील इस सीमा तक मंजूर की गई थी किन्तु इसके अलावा यह निदेश दिया गया था कि यदि अधिक रकम जमा कराई गई थी तो उसका बीमा कंपनी को प्रतिदाय किया जाएगा ।

12. चूंकि बीमाकृत/यान का स्वामी अधिकरण या उच्च न्यायालय के समक्ष कभी भी उपस्थित नहीं हुआ इसलिए दावेदार-अपीलार्थी व्यथित हुआ और इसलिए उसने इस न्यायालय में अपील फाइल की जिसमें उच्च न्यायालय के उस निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई जिसमें इसमें इसके ऊपर लेखबद्ध निदेशों को चुनौती दी गई है ।

13. अपीलार्थी/दावेदार के विद्वान् काउन्सेल ने सारतः यह दलील दी कि उच्च न्यायालय को **सुरेश चन्द्र** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश के विनिश्चयाधार को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश पारित नहीं करना चाहिए था जिसमें इस माननीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब मजदूरों को उनके नियोजन के अनुक्रम में चालक की उपेक्षा के कारण क्षतियां कारित होती हैं और मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा किया जाता है तब प्रतिकर को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय रकम तक सीमित नहीं किया जा सकेगा । इसलिए, यह दलील दी

---

[1] (2007) ए. सी. जे. 50.

गई थी कि आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा अपास्त किया जाना चाहिए । काउन्सेल ने आगे यह दलील दी कि अधिकरण न्यायसंगत था और उसने प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी को ठीक ही यह निदेश दिया था कि वह खर्चों और याचिका की तारीख से संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज सहित प्रतिकर का संदाय करे और चूंकि प्रथम प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी यान का बीमाकर्ता था इसलिए उसे संपूर्ण प्रतिकर का संदाय करने का ठीक ही निदेश दिया गया है । अतः, विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी बीमा कंपनी की अपील को भागतः मंजूर करके गलती की है जिसे अवैध और अविधिमान्य मानकर अभिखंडित करना उपयुक्त है ।

14. बीमा कंपनी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउन्सेल ने दावेदार/अपीलार्थी के काउन्सेल द्वारा दिए गए तर्कों का खंडन किया और आवश्यक रूप से यह दलील दी कि दावेदार क्लीनर को, जो कि अपने नियोजन के अनुक्रम में चालक की उपेक्षा के कारण क्षतिग्रस्त हुआ था, प्रतिकर का संदाय करने के लिए बीमा कंपनी का दायित्व नहीं है क्योंकि वह मोटर यान अधिनियम की अधीन प्रतिकर का दावा करने का हकदार नहीं होगा किन्तु उसका प्रतिकर कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय रकम तक सीमित होगा । तथापि, विद्वान काउन्सेल ने अपनी दलील को स्पष्ट करते हुए इतना स्वीकार किया कि यद्यपि बीमा कंपनी को उससे परे जो कि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन अनुज्ञेय है, मोटर यान अधिनियम के अधीन प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी ठहराया जा सकता है तथापि, वह तब संदेय होगा बशर्ते बीमाकृत/यान के स्वामी ने अपने कर्मचारियों के दायित्व को शामिल करने के लिए उच्चतर प्रीमियम का संदाय किया हो और बीमा कंपनी केवल तभी कर्मचारियों को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व से अधिक प्रतिकर संदत्त करने के लिए दायी होगी । कवर प्रीमियम के संदाय के अभाव में बीमा कंपनी का दायित्व उस दायित्व तक निर्बंधित होगा जो कि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन संदेय है । अतः, यह दलील दी गई थी कि उच्च न्यायालय ने बीमा कंपनी के दायित्व को 32,091/- रुपए तक निर्बंधित करके उसकी अपील को मंजूर करके सही किया है और उसने दावेदार/अपीलार्थी द्वारा रकम का प्रतिदाय करने का आदेश करके सही किया है, जिसे प्रस्तुत दावेदार द्वारा चुनौती दी गई है ।

15. बीमा कंपनी के काउन्सेल ने अपनी दलील के समर्थन में इस न्यायालय

का ध्यान **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रेमबाई पटेल और अन्य**[1] वाले मामले के प्रति आकृष्ट किया है । इस मामले में, दावा याचिका प्रत्यर्थी/दावेदार सं. 3 से 6 द्वारा फाइल की गई थी जिसमें सुन्दर सिंह नामक व्यक्ति की मृत्यु के लिए प्रतिकर का दावा किया गया था, जो कि बीमाकृत/यान के स्वामी का एक कर्मचारी था जिसकी मृत्यु उसके नियोजन के अनुक्रम में हुई दुर्घटना के कारण हो गई थी और मोटर यान अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा करते हुए एक दावा याचिका फाइल की गई थी । उक्त अपील में जो मुख्य प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था, वह यह था कि क्या अपीलार्थी/बीमा कंपनी दावेदारों को अधिनिर्णीत प्रतिकर की संपूर्ण रकम का संदाय करने के लिए दायी थी या उसका दायित्व उस दायित्व तक निर्बंधित था जो कि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन विहित था । विद्वान् न्यायाधीशों ने इस मामले में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया था : –

> "चूंकि बीमा पालिसी एक संविदा की प्रकृति की थी इसलिए किसी स्वामी के लिए ऐसी पालिसी लेना अनुज्ञेय है जिसमें ऐसे किसी कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने की बाबत संपूर्ण दायित्व, जैसा कि मोटर यान अधिनियम की धारा 147(1)(ख) के परन्तुक 1 के उपखंड (क) या उपखंड (ख) या उपखंड (ग) में वर्णित है, बीमा कंपनी पर डाला जा सकता है और बीमा कंपनी संपूर्ण अधिनिर्णय की तुष्टि करने के लिए दायी बन सकेगी । तथापि, इस प्रयोजनार्थ स्वामी को उस विशिष्ट प्रकार की पालिसी अवश्य लेनी चाहिए जिसके लिए उसे अतिरिक्त प्रीमियम का संदाय करना होगा और पालिसी में स्पष्ट रूप से यह दर्शित होना चाहिए कि उपर्युक्त प्रकार के कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने की दशा में बीमा कंपनी का दायित्व उस दायित्व तक निर्बंधित नहीं है जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन उपबंधित है और या तो वह दायित्व अधिक है या संदत्त प्रीमियम की मात्रा और पालिसी के निबंधनों के आधार पर असीमित है ।"

विद्वान् न्यायाधीश ने इस निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि यह निर्वचन संविधान पीठ द्वारा **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **सी. एम. जया और अन्य**[2] वाले निर्णय में अभिव्यक्त मत के अनुरूप है जिसमें मोटर

---

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 172.

[2] (2002) 3 एस. सी. सी. 278.

यान अधिनियम, 1939 की धारा 95(2) के उपबंधों का निर्वचन करते हुए इस न्यायालय ने रिपोर्ट के पैरा 10 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया था :–

> "................ दायित्व कानूनी या संविदागत हो सकेगा । कोई कानूनी दायित्व उससे अधिक नहीं हो सकता है जो स्वयं कानून के अधीन अपेक्षित है । तथापि, अधिनियम की धारा 95 में ऐसी कोई बात नहीं है जो पक्षकारों को व्यापक जोखिम सम्मिलित करने के लिए असीमित या उच्चतर दायित्व सृजित करने की संविदा करने से प्रतिषिद्ध करती हो । ऐसी दशा में, बीमाकर्ता, यथास्थिति, असीमित या उच्चतर दायित्व के संबंध में पालिसी में यथा-विनिर्दिष्ट संविदा के निबंधनों द्वारा आबद्ध होता है । पालिसी में ऐसे किसी निबंधन या खंड के अभाव में, बीमा संविदा के अनुसरण में सीमित कानूनी दायित्व को असीमित या उच्चतर बनाने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है । यदि ऐसा किया जाता है तो यह कानून या बीमा संविदा को भिन्न रूप देने की कोटि में आता है ।"

अनेक अन्य नजीरों का भी अवलंब लिया गया था जो कि **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **शांति बाई और अन्य**[1] और **अमृत लाल सूद** बनाम **कौशल्या देवी थापर**[2] वाले मामलों में दी गई थीं जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसी बीमा पालिसी की दशा में जिसमें उच्चतर प्रीमियम स्वीकार करके कोई उच्चतर दायित्व नहीं लिया गया है, बीमा कंपनी का दायित्व न तो असीमित होता है और न ही मोटर यान अधिनियम, 1939 की धारा 95(2) के अधीन नियत कानूनी दायित्व से उच्चतर होता है । इसके अलावा यह अधिकथित किया गया था कि बीमाकृत व्यक्ति अतिरिक्त उच्चतर प्रीमियम का संदाय करने और पर-व्यक्ति के संबंध में भी उच्चतर जोखिम शामिल कराने के लिए स्वतंत्र है । किन्तु बीमा पालिसी में ऐसे किसी खंड के अभाव में पर-व्यक्ति की बाबत बीमाकर्ता का दायित्व असीमित नहीं हो सकता है और यह केवल कानूनी दायित्व तक सीमित होता है ।

16. अतः, विद्वान् न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि यान का स्वामी यह चाहता है कि धारा 147(1)(ख) के परन्तुक (i) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) में यथा-वर्णित ऐसे किसी कर्मचारी की

---

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 539.

[2] (1998) 3 एस. सी. सी. 744.

मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत बीमा कंपनी का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि वह उससे अधिक या असीमित होना चाहिए तो उसे ऐसी पालिसी अधिक प्रीमियम का संदाय करके लेनी चाहिए और पालिसी में उस संबंध में एक खंड भी अंतर्विष्ट होना चाहिए । तथापि, जहां पालिसी में "कृत्य दायित्व के लिए पालिसी" या "कृत्य दायित्व" का उल्लेख होता है वहां उपर्युक्त प्रकार के कर्मचारियों के संबंध में बीमा कंपनी का दायित्व असीमित नहीं होगा बल्कि वह कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन उद्भूत होने वाले दायित्व तक सीमित होगा । अतः, विद्वान् न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनिर्णय की तुष्टि करने के लिए बीमा कंपनी का दायित्व उस दायित्व तक निर्बंधित होगा जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन उद्भूत होता है और यान का स्वामी अधिनिर्णय के शेष भाग की तुष्टि करने के लिए दायी ठहराया गया था ।

17. इस प्रकार, इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय और आदेश का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत प्रतिकर संदत्त करने का दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व तक निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि यह उससे अधिक या असीमित होना चाहिए । तथापि, इसका अवधारण इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या यान के स्वामी द्वारा पालिसी अतिरिक्त प्रीमियम का संदाय करके ली गई है और क्या उस पालिसी में उस आशय का कोई खंड अंतर्विष्ट है ।

18. अतः, जहां तक उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण का संबंध है कि प्रतिकर केवल उस सीमा तक संदत्त किए जाने के लिए निर्बंधित होगा जो कि व्यापक सामान्यीकरण द्वारा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन संदेय है, यह इस न्यायालय द्वारा उस निर्णय और आदेश में अपनाए गए दृष्टिकोण से भी स्पष्ट रूप से प्रतिकूल है, जिसका अवलंब प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी के काउन्सेल द्वारा लिया गया है, क्योंकि इसमें पर्याप्त रूप से स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में अधिकथित है, जिसे इसमें इसके पूर्व अभिलिखित किया गया है, कि कर्मचारी को संदेय प्रतिकर को मात्र कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन निर्बंधित नहीं किया जा सकता है और इसे विस्तारित किया जा सकता है बशर्ते उस संविदागत दस्तावेज़ में, जो कि बीमा पालिसी है, पालिसी के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए संदत्त किए जाने

वाले प्रीमियम के संबंध में ऐसा खंड सम्मिलित हो ।

19. उपर्युक्त विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना सही नहीं था कि दावेदार/अपीलार्थी कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व से अधिक किसी प्रतिकर के लिए हकदार नहीं था और इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा जारी यह निदेश कि अपीलार्थी/बीमा कंपनी, जो कि प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी है, केवल 32,091/- रुपए का संदाय करने के लिए दायी होगी और शेष रकम का वहन बीमाकृत/यान के स्वामी द्वारा किया जाएगा, अविधिमान्य मानकर अभिखंडित किए जाने के लिए उपयुक्त है क्योंकि उच्च न्यायालय पालिसी के स्वरूप और उसके खंडों की परीक्षा करने में असफल रहा जो कि अधिकरण के समक्ष भी प्रस्तुत नहीं की गई थी ।

20. दावेदार/अपीलार्थी निश्चित रूप से इसमें इसके पूर्व निर्दिष्ट विनिश्चयों के विनिश्चयाधार को ध्यान में रखते हुए कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर से अधिक प्रतिकर की रकम का हकदार है । निस्संदेह, शर्त यह है कि कानूनी दायित्व उस दायित्व से अधिक नहीं हो सकता है जो मोटर यान अधिनियम की धारा 95 के अधीन कानून के अधीन अपेक्षित है जो पक्षकारों को व्यापक जोखिम शामिल करने के लिए असीमित या उच्चतर दायित्व की संविदा करने या उसका सृजन करने के लिए बाध्य या प्रतिषिद्ध नहीं कर सकता है और बीमाकृत व्यक्ति यथास्थिति, असीमित या उच्चतर दायित्व के संबंध में पालिसी में विनिर्दिष्ट संविदा के निबंधनों से आबद्ध होता है । अतः, यद्यपि यह सही है कि सीमित कानूनी दायित्व को असीमित या उच्चतर बनाने तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है तथापि, यह भी प्रत्यक्षतः स्पष्ट है कि जहां तक दावेदार/यान के मृत क्लीनर की हकदारी का संबंध है, उसे कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन प्रतिकर तक निर्बंधित नहीं किया जा सकता है और वह मोटर यान अधिनियम के अधीन भी प्रतिकर के लिए हकदार है जो कि बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों पर निर्भर करेगा ।

21. इस विधिक स्थिति से यह भी स्पष्ट होता है कि वर्तमान मामले में, जहां तक दावेदार की मोटर यान अधिनियम के अधीन हकदारी का संबंध है, दावेदार के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है । तथापि, प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी ने उच्च न्यायालय में एक अपील फाइल की थी जिसमें यह दलील दी गई थी कि अधिकरण का आदेश कर्मकार प्रतिकर

अधिनियम के अधीन दायित्व से अधिक दायित्व की सीमा तक विधितः कायम नहीं रखा जा सकता था और इस विषय पर उच्च न्यायालय द्वारा इस अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य को अनदेखा करके अपीलार्थी/कंपनी की दलील को स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी बीमाकर्ता कंपनी ने उच्च न्यायालय के समक्ष न तो बीमा पालिसी प्रस्तुत की है और न ही यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य पेश किया है कि पालिसी के निबंधनों और शर्तों के अनुसार अतिरिक्त प्रीमियम का संदाय नहीं किया गया है ।

22. अतः, प्रश्न यह है कि प्रतिकर की रकम बीमाकर्ता/बीमा कंपनी और बीमाकृत/यान के स्वामी के बीच ठीक ही प्रभाजित की जा सकती थी अथवा नहीं । तथापि, यान का स्वामी अधिकरण के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ किन्तु बीमा कंपनी ने अधिकरण के समक्ष मामले पर कार्यवाही करने की अनुज्ञा दे दी और जब प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी ने उच्च न्यायालय में अपील फाइल की तब बीमाकृत/यान का स्वामी पुनः उपस्थित होने में असफल रहा किन्तु प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी ने उसकी उपस्थिति पर जोर नहीं दिया । तथापि, उच्च न्यायालय ने इसके अलावा इस बात को भी अनदेखा कर दिया कि प्रतिकर की रकम का यान के स्वामी और बीमा कंपनी के बीच प्रभाजन बीमा कंपनी और बीमाकृत/यान के स्वामी के बीच परस्पर विवाद था और इसलिए बीमाकृत/यान के स्वामी की अनुपस्थिति के कारण ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता था जो कि दावेदार के लिए हानिकर हो चूंकि दावेदार किसी भी दशा में अधिकरण द्वारा अवधारित प्रतिकर की रकम का हकदार है । यदि बीमा कंपनी ने इस स्थिति की उपमति दी थी और बीमाकृत व्यक्ति/यान के स्वामी की अनुपस्थिति में भी कार्यवाही अनुज्ञात की थी जिसे रकम का संदाय करने के लिए दायी ठहराया गया है हालांकि बीमाकृत व्यक्ति उच्चतर प्रीमियम का संदाय करने के लिए दायी हो सकता था, इसके परिणाम स्पष्ट रूप से बीमा कंपनी को भुगतने होंगे और दावेदार को नुकसान उठाने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है ।

23. अतः, हमें उच्च न्यायालय की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के प्रक्रम पर बीमा कंपनी को 32,091/- रुपए से अधिक प्रतिकर की रकम की वसूली बीमाकृत व्यक्ति/स्वामी से करने की स्वतंत्रता देने में कोई विधिक न्यायौचित्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यद्यपि प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी का अभिवाक् यह था कि दावेदार कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन

दायित्व की सीमा से परे किसी प्रकार के प्रतिकर का हकदार नहीं है और प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी ने न तो अधिकरण के समक्ष और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष यह अनुकल्पी अभिवाक् किया है कि यदि दावेदार को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दायित्व की सीमा से परे प्रतिकर के लिए हकदार ठहराया जाता है तो वह इसलिए संदेय नहीं था क्योंकि बीमाकृत व्यक्ति/स्वामी द्वारा बीमा पालिसी के अधीन कोई अतिरिक्त प्रीमियम संदत्त नहीं किया गया था । बीमा कंपनी निचले न्यायालयों, अर्थात् या तो मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण या उच्च न्यायालय के समक्ष कोई अभिवाक् करने में असफल रही है और उसने यह दलील भी नहीं दी थी कि यदि दावेदार कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन संदेय प्रतिकर से परे किसी प्रतिकर का हकदार हो जाता है तो बीमाकृत स्वामी ही उसका संदाय करने के लिए दायी था क्योंकि उसका कोई संविदागत दायित्व नहीं था चूंकि बीमाकृत व्यक्ति/यान के स्वामी ने कोई अतिरिक्त प्रीमियम संदत्त नहीं किया था । इस प्रकार, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा इस अभिवाक् की कभी भी परीक्षा नहीं की गई थी चूंकि बीमा कंपनी ने न तो यह अभिवाक् लिया और न ही इस संबंध में कोई साक्ष्य पेश किया जिससे कि उच्च न्यायालय को बीमा कंपनी के इस अभिवाक् को सीधे ही अपील के प्रक्रम पर स्वीकार करने का कोई कारण मिल सके ।

24. परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय का यह मत कायम रखे जाने योग्य नहीं है जिसमें विवक्षित रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दावेदार/अपीलार्थी कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन हकदारी से परे मोटर यान अधिनियम के अधीन किसी प्रतिकर का हकदार नहीं था जिससे कि प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी को उसे उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर यान के स्वामी से वसूल करने की स्वतंत्रता दी जा सके जब कि प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी यान के स्वामी द्वारा अतिरिक्त प्रीमियम का संदाय न किए जाने के संबंध में अनुकल्पी अभिवाक् करने में असफल रही है और इस तथ्य से भी संतुष्ट हो गई थी कि यान का स्वामी सूचना की तामील के बावजूद भी उपस्थित होने में असफल रहा था ।

25. इस प्रक्रम पर हम उस महत्वपूर्ण कदम का उल्लेख करना उपयुक्त समझते हैं जो बीमा कंपनी आमतौर पर उठाने में असफल रहती है और उसका संबंध सूचना की तामील के बावजूद यान के स्वामी के

उपस्थित न होने से है । यद्यपि बीमा कंपनियां मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष और अपील के प्रक्रम पर भी यह दलील देती हैं कि पालिसी की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए या यान के स्वामी के चालक द्वारा अविधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने के कारण यान का स्वामी ही दावेदार को प्रतिकर का संदाय करने संबंधी अंशतः या संपूर्ण दायित्व का वहन करने के लिए दायी होता है तथापि, बीमा कंपनी यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य पेश करने में असफल रहती है कि स्वामी न कि बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए किस प्रकार दायी है और वह यान के स्वामी की अनुपस्थिति भी स्वीकार कर लेती है जिसकी उपस्थिति यान के स्वामी और बीमा कंपनी के बीच परस्पर-विरोध को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण होती है । जब मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण या उच्च न्यायालय यान के स्वामी की अनुपस्थिति में बीमा कंपनी को बाद में नए सिरे से कार्यवाही संस्थित करके यान के स्वामी से रकम वसूल करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है तो **महाप्रबंधक, केरल राज्य सड़क परिवहन निगम, त्रिवेन्द्रम** बनाम **सुसम्मा थामस**[1] वाले मामले में के विनिश्चयाधार को ध्यान में रखते हुए इससे स्वामी और बीमा कंपनी के बीच नए सिरे से कार्यवाही उद्भूत होती है जिससे मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण पर उस मुद्दे पर फिर से विचारण करने का अनावश्यक भार पड़ता है । वास्तव में, यदि बीमा कंपनी को आरंभिक प्रक्रम पर अधिकरण के समक्ष अकाट्य साक्ष्य पेश करके यह साबित करने में सफल होना था कि यान का स्वामी ही संदाय करने के लिए दायी है भले ही साक्ष्य एकपक्षीय प्रकृति का क्यों न हो, तो वह पश्चात्वर्ती कार्यवाही में कम से कम इस मुद्दे को सुकर बनाएगा जब बीमाकर्ता स्वामी/बीमाकृत व्यक्ति से रकम की वसूली के लिए कार्यवाही संस्थित करता है । किन्तु ऐसे साक्ष्य के अभाव में बीमाकर्ता/कंपनियों को नुकसान होता है और वे स्वामी को लाभ सुनिश्चित करती हैं जो उपस्थित न होने का विकल्प अपनाकर लाभकर स्थिति में होता है । बीमा कंपनियां तब बेहतर स्थिति में होंगी यदि वे अपील के प्रक्रम पर बुद्धिमान बनने की बजाय स्वयं अधिकरण के समक्ष इस मुद्दे को उठाती हैं । जिस बात पर जोर देने की ईप्सा की जाती है वह यह है कि यदि स्वामी अधिकरण के समक्ष उपस्थित न होने का विकल्प अपनाता है हालांकि किसी विशिष्ट

---

[1] (1994) 2 एस. सी. सी. 176.

मामले में उसकी उपस्थिति आवश्यक है तो बीमा कंपनी के लिए यह बेहतर होगा कि वह स्वयं के लिए हानिकर उनकी अनुपस्थिति से उपमत न हो जिससे कि स्वामी उनके अपने जोखिम के कारण बेहतर स्थिति में न हों ।

26. वर्तमान मामले में हमने यह पाया है कि यद्यपि उच्च न्यायालय ने बीमा कंपनी को यान के स्वामी से रकम वसूल करने की स्वतंत्रता प्रदान की थी तथापि, वह अभिव्यक्त रूप से यह लेखबद्ध करने में असफल रहा कि प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अवधारित रकम अपीलार्थी/दावेदार को संदत्त करेगी हालांकि उच्च न्यायालय ने विवक्षित रूप से दावेदार/अपीलार्थी को रकम देने से इनकार नहीं किया है । किन्तु प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा यथा-अवधारित संपूर्ण रकम का अपीलार्थी को संदाय करने के संबंध में स्पष्ट निदेश के अभाव में अपीलार्थी को रकम वसूल करने में अड़चनें आना लाजिमी है । अतः, उच्च न्यायालय के निदेश को यह लेखबद्ध करके उस सीमा तक स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी 32,091/- रुपए से परे अतिशेष रकम का भी दावेदार को ब्याज सहित तुरंत किन्तु इस आदेश के प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह के अवधि के अपश्चात् संदाय करेगी ।

27. अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय का वह निर्णय और आदेश जिसमें विवक्षित रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कर्मचारी/दावेदार केवल कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन न कि मोटर यान अधिनियम के अधीन प्रतिकर का हकदार है, अपास्त किया जाता है और प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी को दावेदार/अपीलार्थी को रकम संदत्त करने वाला तदनुरूपी निदेश दिए बिना प्रत्यर्थी/बीमा कंपनी को वह रकम स्वामी से वसूल करने के लिए प्रदान की गई स्वतंत्रता इसमें इसके पूर्व उपदर्शित सीमा तक उपांतरित की जाती है । तदनुसार अपील मंजूर की जाती है किन्तु हम खर्चे के बारे में कोई आदेश करने से विरत रहते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

[2014] 1 उम. नि. प. 263

पंजाब राज्य

बनाम

मदन मोहन लाल वर्मा

12 अगस्त, 2013

न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) – अवैध परितोषण की प्राप्ति – शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त-आयकर अधिकारी द्वारा मांगी गई रिश्वत की शिकायत तारीख 1 जून, 1994 को किए जाने का कथन – उपायुक्त द्वारा कार्यपालक मजिस्ट्रेट को छापामार दल के सदस्य के रूप में सम्मिलित होने का आदेश तारीख 31 मई, 1994 को किया जाना – अभियोजन पक्ष द्वारा मामले की उत्पत्ति को सही रूप में प्रकट नहीं किए जाने पर अभियुक्त की दोषमुक्ति उचित है ।

मामले के तथ्यों के अनुसार प्रत्यर्थी-अभियुक्त, आयकर निरीक्षक द्वारा शिकायतकता से संपर्क किया गया और उसने उसकी पत्नी के स्वामित्व और कब्जे में के एक मकान और एक कार क्रय करने, जिसे उसके द्वारा आयकर विवरणी में प्रकट नहीं किया गया था, की बाबत निर्धारण आदेश को पुनः खोलने की धमकी दी । शिकायतकर्ता और प्रत्यर्थी-अभियुक्त एक-दूसरे के संपर्क में थे और प्रत्यर्थी ने शिकायतकर्ता से उक्त निर्धारण पुनः नहीं खोलने के लिए अवैध परितोषण के रूप में 25,000/- रुपए मांगे । शिकायतकर्ता एक अन्य व्यक्ति के साथ तारीख 1 जून, 1994 को प्रत्यर्थी-अभियुक्त के मकान पर निर्धारण पुनः नहीं खोलने के लिए बातचीत करने हेतु गया । प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने अवैध परितोषण के रूप में 25,000/- रुपए मांगे और शिकायतकर्ता ने अपनी असमर्थता जाहिर की । इस पर प्रत्यर्थी अवैध परितोषण के भागतः संदाय के रूप में 10,000/- रुपए उसी दिन और शेष 15,000/- रुपए अगले दिन संदत्त किए जाने की बात को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया । शिकायतकर्ता ने 10,000/- रुपए उसी दिन अर्थात् तारीख 1 जून, 1994 को ही संदाय करने का मिथ्या आश्वासन दिया । शिकायतकर्ता पुलिस उप अधीक्षक (सतर्कता), जालंधर के पास गया और उन्होंने जाल बिझाने की तैयारी की । शिकायतकर्ता ने धन अर्थात् 500-500 रुपए के 20 नोटों का प्रबंध किया । नोटों पर

फिनोलफेथालिन पाऊडर लगाया गया और ये नोट शिकायतकर्ता को दिए गए । उन नोटों के संख्यांक अलग-से एक कागज के टुकड़े पर नोट किए गए । शिकायतकर्ता और छाया साक्षी ने अपने-अपने हाथ धोए और प्रत्यर्थी-अभियुक्त के पास उसके मकान पर गए । शिकायतकर्ता ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त को धन दिया । उसने इसे मेज पर रख दिया और एक समाचार-पत्र से ढक दिया । छाया साक्षी ने पुलिस उप अधीक्षक, कार्यपालक मजिस्ट्रेट और छापामार दल के अन्य सदस्यों को पूर्व-निर्धारित संकेत किया और धन को बरामद कर लिया गया । प्रत्यर्थी-अभियुक्त के हाथ सोडियम कार्बोनेट के घोल में धुलवाए गए, जो गुलाबी हो गया । इस बात को देखते हुए, प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध दांडिक अभियोजन आरंभ किया गया । अन्वेषण के पश्चात् प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । विचारण पूर्ण होने पर अभियुक्त-प्रत्यर्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के उपबंधों के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अपील मंजूर करते हुए अभियुक्त-प्रत्यर्थी को दोषमुक्त कर दिया । राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले की परीक्षा स्थिर विधिक प्रतिपादनाओं को ध्यान में रखते हुए किए जाने की आवश्यकता है । जहां तक बरामदगी का संबंध है, प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने यह अभिवाक् किया है कि उसका कर्तव्य शिकायतकर्ता द्वारा की गई कर अपवंचना की बाबत केवल उसे सूचना तामील करना था और निर्धारण आदेश जारी करने का प्राधिकार नहीं था । शिकायतकर्ता को आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अधीन सूचना तामील करना उसका शासकीय कर्तव्य था । शिकायतकर्ता उसके मकान पर आया और प्रत्यर्थी-अभियुक्त को एक गिलास पानी देने के लिए कहा क्योंकि उसे औषधि लेनी थी । वह रसोई में गया और एक गिलास पानी लेकर आया और उसके पश्चात् शिकायतकर्ता से हाथ मिलाया और यही कारण है कि जब प्रत्यर्थी के हाथ धुलवाए गए तो वे गुलाबी हो गए । उच्च न्यायालय ने भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन किए गए प्रतिरक्षा पक्ष के इस वृत्तांत को स्वीकार किया है

और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने जब शिकायतकर्ता से हाथ मिलाया तो उसके हाथों पर फिनोलफेथालिन पाउडर लगने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने उन विभिन्न पश्चात्वर्ती घटनाओं पर भी विचार किया है कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा उसके विरुद्ध अननुपातिक आस्तियां रखने के लिए कतिपय शिकायतें दर्ज की गई थीं । शिकायतकर्ता एक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है । वह एक हत्या के मामले के साथ-साथ मिथ्या नाम में शेयरों के विक्रय के मामले में अंतर्ग्रस्त है । उच्च न्यायालय ने आगे यह भी मत व्यक्त किया है कि यदि दो मत संभव हों, तो अभियुक्त का समर्थन करने वाले मत को अधिमान दिया जाना चाहिए और इस प्रकार प्रत्यर्थी-अभियुक्त को संदेह का फायदा दिया और उसे दोषमुक्त कर दिया । निस्संदेह, उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं और इसका कारण यह है कि भले ही शिकायतकर्ता की आपराधिक पृष्ठभूमि थी, फिर भी उसे आयकर विभाग के अधिकारी द्वारा किसी विशिष्ट वर्ष का निर्धारण पुनः नहीं खोलने के लिए अवैध परितोषण का संदाय करने के लिए बाध्य किया जा सकता था । प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध अननुपातिक आस्तियां रखने के लिए पश्चात्वर्ती मामलों को जाल में फंसाने के मामले की घटना से सहबद्ध नहीं किया जा सकता है । घटना, जिसमें प्रत्यर्थी को अवैध परितोषण लेने के लिए गिरफ्तार किया गया था, की परीक्षा स्वयं उसके गुणागुण के आधार पर की जानी चाहिए । निचले न्यायालयों ने अभि. सा. 2, जो कार्यपालक मजिस्ट्रेट है और उसे अवश्य ही सर्वाधिक विश्वसनीय और स्वतंत्र व्यक्ति समझा जाना चाहिए था और स्वीकृततः वह जाल में फंसाने वाले दल के साथ सहयुक्त था, के कथन पर विचार नहीं किया है । शिकायतकर्ता का पक्षकथन यह था कि वह तारीख 1 जून, 1994 को प्रत्यर्थी-अभियुक्त के मकान पर गया और मोल-भाव करने के पश्चात् 25,000/- रुपए के अवैध परितोषण के भागतः संदाय के रूप में 10,000/- रुपए का उसी दिन संदाय करने के लिए सहमत हुआ । वह तुरंत छाया साक्षी (अभि. सा. 3) के साथ पुलिस उप अधीक्षक (अभि. सा. 12) के पास गया और जाल बिछाने की योजना तैयार की गई और जाल बिछाया गया । अभि. सा. 2, कार्यपालक मजिस्ट्रेट ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसे तारीख 31 मई, 1994 को उपायुक्त द्वारा तारीख 1 जून, 1994 को जाल में फंसाने वाले दल में शामिल होने के लिए लिखित में निदेशित किया गया था । इसलिए यह

स्पष्ट है कि यदि स्वयं शिकायतकर्ता तारीख 1 जून, 1994 को जाल बिछाने के लिए (अभि. सा. 12) के पास गया था, तो तारीख 31 मई, 1994 को उपायुक्त से निदेश प्राप्त होने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं हो सकता । अभि. सा. 2 केवल बरामदगी का साक्षी है, रिश्वत के धन को स्वीकार करने का नहीं । केवल इसी कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभियोजन पक्ष ने मामले की उत्पत्ति को ठीक से प्रकट नहीं किया है । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने लिए कोई तर्कपूर्ण कारण नहीं पाता है । (पैरा 8, 9, 10, 11 और 12)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2059 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **दल सिंह और अन्य** ;	6
[2012]	(2012) 11 एस. सी. सी. 642 : **मुकुट बिहारी और एक अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	7
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1585 : **रुकिया बेगम** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	6
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 354 : **अकबर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	6
[2011]	(2011) 6 एस. सी. सी. 450 : **केरल राज्य और एक अन्य** बनाम **सी. पी. राव** ;	7
[2006]	ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 836 : **टी. सुब्रामण्यन्** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	7
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 498 : **राम प्रकाश अरोड़ा** बनाम **पंजाब राज्य** ।	7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 2052.

1996 की दांडिक अपील सं. 414-एसबी में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 3 मार्च, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री अशोक कुमार पंडा, लिंगराज सारंगी, राजीव नंदा, सैय्यद तनवीर अहमद, बी. वी. बलराम दास और अरविंद कुमार शर्मा
प्रत्यर्थी की ओर से	स्वयं मदन मोहन लाल वर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान ने दिया ।

न्या. चौहान – यह अपील 1996 की दांडिक अपील सं. 414-एसबी में चंडीगढ़ स्थित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के तारीख 28 मई, 1996 के उस निर्णय, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम, 1988' कहा गया है) की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के उपबंधों के अधीन दोषसिद्ध ठहराया गया और प्रत्येक धारा के अधीन एक-एक वर्ष का कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया और 2,500/- रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया गया तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक मास का और कठोर कारावास भुगतने का आदेश दिया गया, को अपास्त करते हुए तारीख 3 मार्च, 2009 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है ।

2. वे तथ्य और परिस्थितियां, जिनसे यह अपील उद्‌भूत हुई, ये हैं :–

क. प्रत्यर्थी-आयकर निरीक्षक द्वारा शिकायतकर्ता-नरेश कुमार कपूर से संपर्क किया गया और उसने विशिष्ट रूप से उसकी पत्नी श्रीमती नीरू कपूर के स्वामित्व और कब्जे में के माडल टाउन, जालंधर स्थित मकान सं. 456 और एक कार क्रय करने, जिसे शिकायतकर्ता द्वारा आयकर विवरणी में प्रकट नहीं किया गया था, की बाबत निर्धारण आदेश को पुनःखोलने की धमकी दी । शिकायतकर्ता और प्रत्यर्थी-अभियुक्त एक-दूसरे के संपर्क में थे और प्रत्यर्थी ने उक्त निर्धारण पुनः नहीं खोलने के लिए अवैध परितोषण के रूप में 25,000/-रुपए मांगे ।

ख. शिकायतकर्ता-नरेश कुमार कपूर (अभि. सा. 7) राज कुमार शर्मा (अभि. सा. 3) के साथ तारीख 1 जून, 1994 को प्रत्यर्थी-अभियुक्त के मकान पर अर्थात् 638, मोटा सिंह नगर, जालंधर निर्धारण पुनः नहीं खोलने के लिए बातचीत करने हेतु गया । प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने अवैध परितोषण के रूप में 25,000/- रुपए मांगे और शिकायतकर्ता ने अपनी असमर्थता जाहिर की । इस पर प्रत्यर्थी अवैध परितोषण के भागतः संदाय के रूप में

10,000/- रुपए उसी दिन और शेष 15,000/- रुपए अगले दिन संदत्त किए जाने की बात को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया । शिकायतकर्ता ने 10,000/- रुपए उसी दिन अर्थात् तारीख 1 जून, 1994 को ही संदाय करने का मिथ्या आश्वासन दिया । शिकायतकर्ता हरीश कुमार (अभि. सा. 12) पुलिस उप अधीक्षक (सतर्कता), जालंधर के पास गया और उन्होंने जाल बिछाने की तैयारी की ।

ग. शिकायतकर्ता ने धन अर्थात् 500-500 रुपए के 20 नोटों का प्रबंध किया । नोटों पर फिनोलफेथालिन पाउडर लगाया गया और ये नोट शिकायतकर्ता को दिए गए । उन नोटों के संख्यांक अलग-से एक कागज के टुकड़े पर नोट किए गए । शिकायतकर्ता और छाया साक्षी राज कुमार शर्मा (अभि. सा. 3) ने अपने-अपने हाथ धोए और प्रत्यर्थी-अभियुक्त के पास उसके मकान पर गए । शिकायतकर्ता ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त को धन दिया । उसने इसे मेज पर रख दिया और एक समाचार-पत्र से ढक दिया । छाया साक्षी राज कुमार (अभि. सा. 3) ने पुलिस उप अधीक्षक हरीश कुमार शर्मा (अभि. सा. 12), कार्यपालक मजिस्ट्रेट और छापामार दल के अन्य सदस्यों को पूर्व-निर्धारित संकेत किया और धन को बरामद किया गया । प्रत्यर्थी-अभियुक्त के हाथ सोडियम कार्बोनेट के घोल में धुलवाए गए, जो गुलाबी हो गए । इस बात को देखते हुए, दांडिक अभियोजन आरंभ किया गया ।

घ. अन्वेषण के पश्चात् प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में 12 साक्षियों की परीक्षा कराई और प्रतिरक्षा पक्ष ने भी 9 साक्षियों की परीक्षा कराई । विचारण के समापन पर प्रत्यर्थी को इसमें ऊपर निर्दिष्ट अनुसार दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया ।

ङ. प्रत्यर्थी ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की, जो तारीख 3 मार्च, 2009 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा मंजूर की गई । इसलिए यह अपील फाइल की गई है ।

3. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री अशोक कुमार पंडा ने यह दलील दी कि यह एक सुस्पष्ट मामला है । विचारण न्यायालय ने तर्कपूर्ण कारण दिए थे और उच्च न्यायालय के लिए अभियोजन के पक्षकथन को त्यक्त करने का कोई न्यायोचित्य नहीं था । कार्यपालक मजिस्ट्रेट, गुरलेबलीन सिंह (अभि. सा. 2) सहित सभी साक्षियों ने अभियोजन के पक्षकथन का पूर्णतः समर्थन किया था । विचारण

न्यायालय ने यह पाया कि अवैध परितोषण की मांग की गई थी और प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त की गई रकम छापामार दल द्वारा सम्यक् रूप से बरामद की गई थी । इस प्रकार अपराधों, जिनके लिए प्रत्यर्थी को अभियोजित किया गया था, को गठित करने के लिए सभी संघटक पूर्ण किए गए थे । इसलिए यह अपील मंजूर की जानी चाहिए ।

4. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-स्वयं ने यह दलील दी कि शिकायतकर्ता एक उद्योगपति है और उसने कर की अपवंचना की थी । शिकायतकर्ता एक एनजीओ भी चलाता है और एक भ्रष्टाचार-निरोध सोसायटी का अध्यक्ष भी है । उक्त सोसायटी के अन्य पदधारियों ने भी प्रत्यर्थी-अभियुक्त के पुत्र के विरुद्ध बहुत सारी शिकायतें की थीं । शिकायतकर्ता उसे धमकी दे रहा था और उस पर तारीख 14 अक्तूबर, 1994 को हमला भी किया था तथा क्षतियां कारित की थीं, जिसकी बाबत उसके विरुद्ध शिकायतें की गई थीं । प्रत्यर्थी ने दांडिक न्यायालयों में बहुत सारे मामले भी फाइल किए थे, जो केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अधिकारियों द्वारा न्यायालय के बाहर तय कर लिए गए थे और इसे देखते हुए मामले वापस ले लिए गए थे । इस न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए यथा अधिकथित मानदंडों को लागू किया जाना चाहिए । इसलिए यह अपील खारिज की जानी चाहिए ।

5. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल तथा प्रत्यर्थी-स्वयं द्वारा दी गई विरोधी दलीलों पर विचार किया है ।

6. यह एक स्थिर विधिक प्रतिपादना है कि अपील न्यायालय को आपवादिक परिस्थितियों में बाध्यकारी कारणों से निचले न्यायालय द्वारा पारित किए गए किसी दोषमुक्ति के निर्णय को उलटने में तब संकोच नहीं करना चाहिए, यदि निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष अनुचित पाए जाते हैं अर्थात् यदि निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अभिलेख के साक्ष्य के प्रतिकूल हैं, या यदि साक्ष्य पर विचार करने की बाबत न्यायालय का संपूर्ण दृष्टिकोण स्पष्टतः अवैध पाया जाता है जिससे न्याय की हानि हुई हो, या यदि उसका निर्णय अयुक्तियुक्त है और विधि तथा मामले के तथ्यों की गलत समझ पर आधारित है । अपील न्यायालय को ऐसा करते समय अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा को अवश्य मस्तिष्क में रखना चाहिए और यह भी कि निचले न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति निर्दोषिता की ऐसी उपधारणा को अवलंब

प्रदान करती है (**अकबर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1], **रुकिया बेगम** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] और **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **दल सिंह और अन्य**[3] वाले मामले देखें) ।

7. इस मुद्दे पर विधि सुस्थिर है कि अधिनियम, 1988 के अधीन अपराध गठित करने के लिए अवैध परितोषण की मांग करना अत्यावश्यक है । जब मामले में सारभूत साक्ष्य विश्वसनीय न हो, दूषित धन की केवल बरामदगी अभियुक्त को तब तक दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है जब तक कि रिश्वत के संदाय को साबित करने के लिए या यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य न हो कि धन स्वेच्छा से रिश्वत के रूप में लिया गया था । अवैध परितोषण के रूप में रकम की मांग करने और रकम स्वीकार करने के बारे में किसी साक्ष्य के अभाव में, अभियुक्त द्वारा रकम की मात्र प्राप्ति दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है । इसलिए यह भार अभियुक्त पर होता है कि अधिनियम, 1988 की धारा 20 के अधीन की गई कानूनी उपधारणा को, अभिलेख पर या तो प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य लाकर युक्तियुक्त अधिसंभाव्यता के साथ यह सिद्ध करने के लिए कि उसके द्वारा धन अधिनियम, 1988 की धारा 7 में यथा निर्दिष्ट किसी हेतु या पारिश्रमिक से भिन्न रूप में स्वीकार किया गया था, निरस्त करे । अधिनियम की धारा 20 के उपबंधों का अवलंब लेते समय न्यायालय के लिए यह अपेक्षित है कि अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, पर केवल अधिसंभाव्यता की प्रबलता की कसौटी के आधार पर विचार करे न कि सभी युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत की कसौटी के आधार पर । तथापि, इससे पूर्व कि अभियुक्त को यह स्पष्ट करने के लिए कहा जाए कि उसके कब्जे में प्रश्नगत रकम कैसे पाई गई थी, अभियोजन पक्ष द्वारा आधारभूत तथ्यों को अवश्य सिद्ध करना चाहिए । शिकायतकर्ता जाल में फंसाने की सफलता के सरोकार के साथ एक हितबद्ध और पक्षपाती साक्षी होता है और उसके साक्ष्य का परीक्षण अवश्य ही उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार किसी अन्य हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य का किया जाता है । किसी उचित मामले में, न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध करने से पूर्व स्वतंत्र संपुष्टि की प्रत्याशा कर

[1] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 354.
[2] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1585.
[3] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2059.

सकता है (**राम प्रकाश अरोड़ा** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **टी. सुब्रामण्यन्** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2], **केरल राज्य और एक अन्य** बनाम **सी. पी. राव**[3] और **मुकुट बिहारी और एक अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य**[4] वाले मामले देखें) ।

8. इस मामले की परीक्षा पूर्वोक्त स्थिर विधिक प्रतिपादनाओं को ध्यान में रखते हुए किए जाने की आवश्यकता है । जहां तक बरामदगी का संबंध है, प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने यह अभिवाक् किया है कि उसका कर्तव्य शिकायतकर्ता द्वारा की गई कर अपवंचना की बाबत केवल उसे सूचना तामील करने का था और निर्धारण आदेश जारी करने का प्राधिकार नहीं था । शिकायतकर्ता को आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अधीन सूचना तामील करना उसका शासकीय कर्तव्य था । शिकायतकर्ता उसके मकान पर आया और प्रत्यर्थी-अभियुक्त को एक गिलास पानी देने के लिए कहा क्योंकि उसे औषधि लेनी थी । वह रसोई में गया और एक गिलास पानी लेकर आया और उसके पश्चात् शिकायतकर्ता से हाथ मिलाया और यही कारण है कि जब प्रत्यर्थी के हाथ धुलवाए गए तो वे गुलाबी हो गए ।

9. उच्च न्यायालय ने भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन किए गए प्रतिरक्षा पक्ष के इस वृत्तांत को स्वीकार किया है और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने जब शिकायतकर्ता से हाथ मिलाया तो उसके हाथों पर फिनोलफेथालिन पाउडर लगने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने उन विभिन्न पश्चात्वर्ती घटनाओं पर भी विचार किया है कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा उसके विरुद्ध अननुपातिक आस्तियां रखने के लिए कतिपय शिकायतें दर्ज की गई थीं । शिकायतकर्ता नरेश कुमार कपूर एक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है । वह एक हत्या के मामले के साथ-साथ मिथ्या नाम में शेयरों के विक्रय के मामले में अंतर्ग्रस्त है । उच्च न्यायालय ने आगे यह भी मत व्यक्त किया है कि यदि दो मत संभव हों, तो अभियुक्त का समर्थन करने वाले मत को अधिमान दिया जाना चाहिए और इस प्रकार प्रत्यर्थी-अभियुक्त को संदेह का फायदा दिया और उसे दोषमुक्त कर दिया ।

10. निस्संदेह, उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है और इसका कारण यह है कि भले ही शिकायतकर्ता की

---

[1] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 498.
[2] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 836.
[3] (2011) 6 एस. सी. सी. 450.
[4] (2012) 11 एस. सी. सी. 642.

आपराधिक पृष्ठभूमि थी, फिर भी उसे आयकर विभाग के अधिकारी द्वारा किसी विशिष्ट वर्ष का निर्धारण पुनः नहीं खोलने के लिए अवैध परितोषण का संदाय करने के लिए बाध्य किया जा सकता था । प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध अननुपातिक आस्तियां रखने के लिए पश्चात्वर्ती मामलों को जाल में फंसाने के मामले की घटना से सहबद्ध नहीं किया जा सकता है । घटना, जिसमें प्रत्यर्थी को अवैध परितोषण लेने के लिए गिरफ्तार किया गया था, की परीक्षा स्वयं उसके गुणागुण के आधार पर की जानी चाहिए । निचले न्यायालयों ने गुरलेबलीन सिंह (अभि. सा. 2), जो कार्यपालक मजिस्ट्रेट है और उसे अवश्य ही सर्वाधिक विश्वसनीय और स्वतंत्र व्यक्ति समझा जाना चाहिए था और स्वीकृततः वह जाल में फंसाने वाले दल के साथ सहयुक्त था, के कथन पर विचार नहीं किया है ।

11. शिकायतकर्ता का पक्षकथन यह था कि वह तारीख 1 जून, 1994 को प्रत्यर्थी-अभियुक्त के मकान पर गया और मोल-भाव करने के पश्चात् 25,000/- रुपए के अवैध परितोषण के भागतः संदाय के रूप में 10,000/- रुपए का उसी दिन संदाय करने के लिए सहमत हुआ । वह तुरंत छाया साक्षी राजकुमार शर्मा (अभि. सा. 3) के साथ हरीश कुमार (अभि. सा. 12), पुलिस उप अधीक्षक के पास गया और जाल बिछाने की योजना तैयार की गई और जाल बिछाया गया । गुरलेबलीन सिंह (अभि. सा. 2), कार्यपालक मजिस्ट्रेट ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसे तारीख 31 मई, 1994 को उपायुक्त द्वारा तारीख 1 जून, 1994 को जाल में फंसाने वाले दल में शामिल होने के लिए लिखित में निदेशित किया गया था । इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि स्वयं शिकायतकर्ता तारीख 1 जून, 1994 को जाल बिछाने के लिए हरीश कुमार (अभि. सा. 12) के पास गया था, तो तारीख 31 मई, 1994 को उपायुक्त से निदेश प्राप्त होने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं हो सकता । गुरलेबलीन सिंह (अभि. सा. 2) केवल बरामदगी का साक्षी है, रिश्वत के धन को स्वीकार करने का नहीं । केवल इसी कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभियोजन पक्ष ने मामले की उत्पत्ति को ठीक से प्रकट नहीं किया है ।

12. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हम उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने लिए कोई तर्कपूर्ण कारण नहीं पाते हैं । तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2014] 1 उम. नि. प. 273

मधु उर्फ मधुरंता और एक अन्य

बनाम

कर्नाटक राज्य

28 नवम्बर, 2013

न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 364/302/201/34 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – अपहरण और मृत्यु कारित किया जाना – पारिस्थितिक साक्ष्य – मृत्यु से ठीक पूर्व मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने, अभियुक्तों द्वारा अभियोजन साक्षियों के समक्ष न्यायिकेतर संस्वीकृति किए जाने तथा साक्षियों के साक्ष्य विश्वासोत्पादक पाए जाने पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई अभियुक्तों की दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – स्वतंत्र साक्षी – पुलिस साक्षी – पुलिस पदधारियों के साक्ष्य को, यदि वह विश्वासोत्पादक पाया जाता है, केवल इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है कि वे पुलिस बल से संबंधित है, तथापि, तात्विक विशिष्टियों के संबंध में ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि की जानी आवश्यक है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 174 और 176 – पुलिस अन्वेषण – अन्वेषक अधिकारी द्वारा शव की मृत्यु-समीक्षा करने के लिए कार्यपालक मजिस्ट्रेट को सूचित न किया जाना – विधि में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिससे कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट की लिखित में अनुज्ञा के बिना या उसकी अनुपस्थिति में अन्वेषण न किया जा सकता हो और न तो मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट और न ही मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट को मूल या सारभूत साक्ष्य की संज्ञा दी जा सकती है तथा इनमें प्रकट होने वाली किसी विसंगति को ऐसी घातक या संदेहास्पद परिस्थिति नहीं कहा जा सकता है जिससे अभियुक्त को संदेह का फायदा प्राप्त हो सके ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 364 और 302 – अपहरण और मृत्यु कारित किया जाना – मृत्यु दंडादेश – मृत्यु दंडादेश का विकल्प चुनने से पूर्व अपराधी और अपराध की परिस्थितियों के साथ-

साथ गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों और अपराध कारित करने की रीति पर विचार किया जाना चाहिए और यदि अपराध कारित करने की रीति ऐसी हो कि न्यायालय की न्यायिक अंतश्चेतना झकझोरती हो, तो मृत्यु दंडादेश दिया जाना उचित होगा ।

मामले के तथ्यों के अनुसार मृतक अपने चाचा (अभि. सा. 1) के कहने पर अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 से अदरक के क्रय और विक्रय संबंधी बकाया देयों का संग्रहण करने के लिए आनंदपुरा से सागर गया था । क्योंकि मधुसूदन वापस नहीं आया, इसलिए अभि. सा. 1 को चिंता हुई और अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 से मधुसूदन का पता-ठिकाना पता लगाने के लिए संपर्क किया । उन्होंने अभि. सा. 1 को सूचित किया कि मधुसूदन ने उनसे क्रमशः 2,50,000/- रुपए और 1,50,000/- रुपए संगृहीत किए थे और आनंदपुरा के लिए चला गया था । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 ने यह संदेह जताते हुए कि मधुसूदन का व्यपहरण कर लिया गया है पुलिस थाना, सागर में अनामित व्यक्तियों के विरुद्ध शिकायत-प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । इसी बीच आनंदपुरा में यह अफ़वाह फैली कि अपीलार्थियों ने धन लूटा था और मधुसूदन की हत्या कर दी थी क्योंकि कुछ व्यक्ति आगे आए थे और सूचित किया था कि उन्होंने तारीख 8 अगस्त, 2005 को अपराह्न में 12.45 बजे मृतक मधुसूदन को अपीलार्थियों के साथ देखा था । इसे देखते हुए, अपीलार्थियों और एक अन्य व्यक्ति के विरुद्ध पुलिस थाना, आनंदपुरा में भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 365 के अधीन एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया और उन्होंने कतिपय स्वैच्छिक कथन किए, जिनके आधार पर बरामदगियां की गईं । अभियुक्त-3 पुलिस और बरामदगी साक्षियों को जंगल के क्षेत्र में लेकर गया और एक स्थान बताया जहां से शव को खोदकर निकाला गया । शरीर का केवल धड़ पाया गया, क्योंकि सिर को काट दिया गया था और निकटवर्ती नदी में फेंक दिया गया था । इसके तुरंत पश्चात् लूटी गई अधिकांश रकम अपीलार्थियों से बरामद कर ली गई । अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और विचारण आरंभ किया गया । साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 302 और 201 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए मृत्यु दंडादेश तथा अन्य दंडादेश अधिनिर्णीत किए । अपीलार्थी-अभियुक्तों ने

व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं, जो खारिज कर दी गईं । तथापि, उच्च न्यायालय ने एक सरसरी मताभिव्यक्ति की कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 364-क के अधीन आरोप विरचित किया जाना चाहिए था । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय ने पारिस्थितिक साक्ष्य के मामलों पर अनेक बार विचार किया है । सतत रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि केवल पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । अभियोजन पक्षकथन की सफलता या असफलता स्वयं उसके साक्ष्य पर निर्भर होनी चाहिए और वह अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत की गई प्रतिरक्षा की दुर्बलता से बल प्राप्त नहीं कर सकता है । तथापि, किसी मिथ्या प्रतिरक्षा की सहायता न्यायालय को आश्वस्त करने के लिए केवल वहां ली जा सकती है जहां पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला की विभिन्न कड़ियां स्वयं में पूर्ण हों । वे परिस्थितियां, जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूर्णतः सिद्ध होनी चाहिएं । ऐसे सिद्ध तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता के संगत होने चाहिएं, अर्थात्, वे स्पष्ट करने योग्य न हों या इसके सिवाय कि अभियुक्त दोषी है किसी अन्य परिकल्पना को इंगित न करते हों । परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिएं । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य ऐसी प्रकृति का होना चाहिए कि यह अभियुक्त की दोषिता को संधार्य बनाता हो । दोनों निचले न्यायालयों ने उपर्युक्त परिस्थितियों को पूर्वोक्त विधिक प्रतिपादनाओं को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपीलार्थियों ने ही अपराध किया था । इस न्यायालय को तथ्य के ऐसे समवर्ती निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता है । (पैरा 6 और 7)

पुलिस पदधारियों के साक्ष्य को केवल इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि वे पुलिस से संबंधित हैं और या तो अन्वेषण या अभियोजन में हितबद्ध हैं । तथापि, जहां तक संभव हो, तात्विक विशिष्टियों पर उनके साक्ष्य की संपुष्टि की ईप्सा की जानी चाहिए । इस प्रकार, कोई साक्षी सामान्यतः तब तक स्वतंत्र साक्षी समझा जाता है जब तक कि उसका उद्‌भव ऐसे स्त्रोतों से न हुआ हो, जिनका दूषित होना संभाव्य है और इसका प्रायिक रूप से यह अर्थ है कि उक्त साक्षी के पास अभियुक्त के विरुद्ध ऐसी दुश्मनी बरतने का हेतुक हो ताकि वह उसे मिथ्या रूप से

आलिप्त कर सके । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, इस आशय का ऐसा कोई प्रतिषेध नहीं हो सकता है कि कोई पुलिसकर्मी साक्षी नहीं हो सकता है या उसके अभिसाक्ष्य का, यदि वह विश्वासोत्पादक है, अवलंब नहीं लिया जा सकता हो । (पैरा 12 और 13)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 की उपधारा (1) में अन्वेषक अधिकारी पर केवल यह बाध्यता डाली गई है कि मृत्यु-समीक्षा करने के लिए सशक्त कार्यपालक मजिस्ट्रेट को सूचित करे, किंतु विधि में ऐसा कुछ नहीं है जो यह उपबंध करती हो कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट की लिखित में अनुज्ञा के बिना या उसकी अनुपस्थिति में अन्वेषण न किया जा सकता हो । अन्यथा भी, "जब तक राज्य सरकार द्वारा विहित किसी नियम या जिला अथवा उप-मण्डल मजिस्ट्रेट के किसी सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निदिष्ट न हो" शब्दों से यह बात विशेषित हो जाती है । मृत्यु-समीक्षा की कार्यवाही का उद्देश्य केवल यह अभिनिश्चित करना है कि क्या व्यक्ति अस्वाभाविक परिस्थितियों में मरा है या अस्वाभाविक मृत्यु है और यदि ऐसा है, तो मृत्यु का कारण क्या है । इसके अतिरिक्त, मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट एक सारभूत साक्ष्य नहीं है और केवल विचारण के दौरान परीक्षा कराए गए मृत्यु-समीक्षा के साक्षियों की बात का खंडन करने के लिए ही उपयोग किया जा सकता है । न तो मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट और न ही मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट को मूल या सारभूत साक्ष्य की संज्ञा दी जा सकती है और इस प्रकार इनमें प्रकट होने वाली किसी विसंगति को ऐसी घातक या संदेहास्पद परिस्थिति नहीं कहा जा सकता है, जिससे अभियुक्त को संदेह का फायदा प्राप्त हो सके । (पैरा 15)

मामले के तथ्यों में मृत्यु की शास्ति देना आवश्यक नहीं है । मृत्यु जैसी अधिकतम शास्ति चरम आपराधिता के घोरतम मामलों के सिवाय दिए जाने की आवश्यकता नहीं है । मृत्यु की शास्ति का विकल्प चुनने से पूर्व अपराधी की परिस्थितियों के साथ-साथ अपराध की परिस्थितियों पर भी विचार किया जाना चाहिए और इसका कारण यह है कि आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है । मृत्यु दंडादेश की शास्ति केवल ऐसे मामले में दी जा सकती है, जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आजीवन कारावास का अधिरोपण अपराध की सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पूर्णतः अपर्याप्त है । गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों का तुलन-पत्र बनाया जाना चाहिए और ऐसा करने में न्यूनकारी परिस्थितियों को पूरा अधिमान दिया जाना चाहिए तथा विकल्प

चुनने से पूर्व गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के बीच एक न्यायसंगत संतुलन बनाया जाना चाहिए । मृत्यु की शास्ति अधिनिर्णीत करने के लिए विशेष कारण देने की शर्त का शाब्दिक रूप से अर्थान्वयन नहीं किया जाना चाहिए अपितु यह मृत्यु की शास्ति का समर्थन करने वाले और निर्विवाद बनाने वाले तर्क की मूल विशेषताओं का समाधान करे । परिस्थितियां और अपराध कारित करने की रीति ऐसी होनी चाहिए कि इससे न्यायालय की न्यायिक अंतश्चेतना इस सीमा तक झकझोरती हो कि एकमात्र और अपरिहार्य निष्कर्ष मृत्यु की शास्ति अधिनिर्णीत करने का निकलना चाहिए । प्रस्तुत मामले में अंतर्वलित तथ्य और परिस्थितियां इसमें ऊपर यथा स्पष्टीकृत विरल से विरलतम मामले की अपेक्षा को पूरा नहीं करते हैं और न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि यह ऐसा उपयुक्त मामला नहीं है जहां अपीलार्थियों को दिए गए मृत्यु दंडादेश की अभिपुष्टि की जाए । न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थियों को परिहार के बिना 30 वर्ष का कारावास अधिनिर्णीत करने से न्याय की पूर्ति हो जाएगी । (पैरा 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	जे. टी. (2013) 8 एस. सी. 181 : **रोहताश कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	9
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 1204 : **लक्ष्मी बाई (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत और एक अन्य** बनाम **भगवंतबुआ (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत और अन्य** ;	14
[2013]	जे. टी. (2013) 12 एस. सी. 213 : **उमेश कुमार** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	16
[2013]	(2013) 2 एस. सी. सी. 713 : **गुरवैल सिंह** उर्फ **गाला** बनाम **पंजाब राज्य** ;	24
[2012]	(2012) 5 एस. सी. सी. 766 : **नील कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	22
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 537 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **संजय कुमार** ;	24

[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 200 : **परमजीत सिंह** उर्फ **पम्मा** बनाम **उत्तराखंड राज्य** ;	6
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 2689 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **गोरक्षा अंबाजी अडसुल** ;	22
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 56 : **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	23
[2010]	(2010) 8 एस. सी. सी. 191 : **विजय** उर्फ **चीनी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	9
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 762 : **मुशीर खान** उर्फ **बादशाह खान और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	18
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 152 : **पुलिस निरीक्षक की मार्फत राज्य** बनाम **स्वर्णन्** **और एक अन्य** ;	9
[2008]	(2008) 13 एस. सी. सी. 767 : **स्वामी श्रद्धानंद** उर्फ **मुरली मनोहर मिश्रा** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	24
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2040 : **रविन्द्रन्** बनाम **सीमाशुल्क अधीक्षक** ;	12
[2005]	ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 1000 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश** ;	6
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4311 : **एम. प्रभूलाल** बनाम **सहायक निदेशक,** **राजस्व आसूचना निदेशालय;**	12
[2002]	ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1661 : **देवेन्द्र पाल सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र,** **दिल्ली राज्य** ;	22
[2001]	ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3031 : **मुंशी प्रसाद और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ;	15
[2000]	ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 2207 : **सुरेश राय और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ;	15

[1998]	ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 201 : **कल्पनाथ नाय** बनाम **राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत)** ;	12
[1998]	ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1376 : **जार्ज और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य** ;	15
[1996]	(1996) 11 एस. सी. सी. 139 : **बलबीर सिंह** बनाम **राज्य** ;	12
[1995]	ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1930 : **प्रदीप नारायण मडगांवकर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	12
[1993]	ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1212 : **परस राम** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	12
[1992]	ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1944 : **कुलदीप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	15
[1992]	(1992) 3 एस. सी. सी. 106 : **गणेश लाल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	17
[1985]	ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 48 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **एम. के. एंथनी** ;	9
[1984]	ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622 : **शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	6
[1983]	ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 957 : **मछी सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	22
[1980]	ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 898 : **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	22
[1978]	ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1558 : **रामेश्वर दयाल और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	15
[1975]	ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1252 : **पूडा नारायण और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	15

[1974] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 348 :
पूरन मल बनाम **आय कर निरीक्षण निदेशक, नई दिल्ली और अन्य** ; 16

[1972] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2077 :
निका राम बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** । 17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 1357-1358 और इसके साथ 2013 की दांडिक अपील सं. 109.

2008 की दांडिक अपील सं. 833, 855 और 864 में बंगलौर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 8 सितम्बर, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एन. डी. बी. राजू, (सुश्री) भारती राजू, एन. गणपति, अमित कुमार, अंकित राजगढ़िया और ऋतुराज

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री वी. एन. रघुपति और वरूण ठाकुर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान ने दिया ।

न्या. (डा.) चौहान – ये अपीलें 2008 की दांडिक अपील सं. 833, 855 और 864 में बंगलौर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 8 सितम्बर, 2010 को पारित किए गए उस आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश की अभिपुष्टि की है और 2005 के सेशन मामला सं. 152 में विद्वान् जिला और सेशन न्यायाधीश के तारीख 11/17 जुलाई, 2008 को पारित किए गए निर्णय और आदेश की पुष्टि भारतीय दंड संहिता, 1860 की आरोपित करने वाली उन धाराओं के बारे में कतिपय मताभिव्यक्ति करते हुए की है, जिनके द्वारा और जिनके अधीन अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364/302/201 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए प्रत्येक को 7 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 25,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के

संदाय में व्यतिक्रम करने पर 18 मास की अवधि के लिए अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है । उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया है और प्रत्येक को 5 वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर 12 मास की अवधि के लिए अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडोदश दिया गया है । सभी तीनों अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया है और मृत्यु दंडादेश दिया गया है ।

2. वे तथ्य और परिस्थितियां, जिनसे ये अपीलें उद्भूत हुई, ये हैं : –

(क) मधुसूदन, मृतक अपने चाचा प्रहलाद (अभि. सा. 1) के कहने पर के. बी. श्रीनाथ (अभि. सा. 2) और के. एस. किरन (अभि. सा. 12) से अदरक के क्रय और विक्रय संबंधी बकाया देयों का संग्रहण करने के लिए आनंदपुरा से सागर गया था । क्योंकि मधुसूदन वापस नहीं आया, इसलिए प्रहलाद (अभि. सा. 1) को चिंता हुई और के. बी. श्रीनाथ (अभि. सा. 2) और के. एस. किरन (अभि. सा. 12) से मधुसूदन का पता-ठिकाना पता लगाने के लिए संपर्क किया । के. बी. श्रीनाथ (अभि. सा. 2) और के. एस. किरन (अभि. सा. 12) दोनों ने प्रहलाद (अभि. सा. 1) को सूचित किया कि मधुसूदन ने उनसे अपराह्न में लगभग 12.30 बजे क्रमशः 2,50,000/- रुपए और 1,50,000/- रुपए संगृहीत किए थे और आनंदपुरा के लिए चला गया था । प्रहलाद (अभि. सा. 1) ने मधुसूदन के पते-ठिकाने का पता लगाने के लिए अपने सभी नातेदारों और मित्रों से संपर्क किया किंतु कुछ पता नहीं चला ।

(ख) के. बी. श्रीनाथ (अभि. सा. 2) और के. एस. किरन (अभि. सा. 12) ने यह संदेह जताते हुए कि मधुसूदन का व्यपहरण कर लिया गया है पुलिस थाना, सागर में अनामित व्यक्तियों के विरुद्ध शिकायत-प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 148/2005 (प्रदर्श पी-84) दर्ज कराई । इसी बीच आनंदपुरा में यह अफ़वाह फैली कि अपीलार्थियों ने धन लूटा था और मधुसूदन की हत्या कर दी थी क्योंकि कुछ व्यक्ति अर्थात् नागेश (अभि. सा. 4), सिराजुद्दीन (अभि. सा. 5), नागेन्द्र (अभि. सा. 3) और चन्द्रशेखर (अभि. सा. 6) आगे आए थे और सूचित किया था कि उन्होंने तारीख 8 अगस्त, 2005 को अपराह्न में 12.45 बजे मृतक मधुसूदन को अपीलार्थियों के साथ देखा था ।

(ग) इसे देखते हुए, अपीलार्थियों और एक लक्ष्मीशा नामक व्यक्ति के

विरुद्ध तारीख 11 अगस्त, 2005 को पुलिस थाना, आनंदपुरा में भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 365 के अधीन एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । पुलिस ने मधुसूदन तथा अपीलार्थियों को ढूंढने की कोशिश की । अन्वेषक अभिकरण को जानकारी मिली कि मृतक को अपीलार्थियों के साथ एक मारूति वैन सं. के ए-15-3112 में देखा गया था और उस वैन के पिछले भाग पर "कडाला मुत्तू" लिखा हुआ था । इस प्रकार, अन्वेषक अधिकारी ने उक्त यान की तलाश करने की कोशिश की और पता चला कि यह यान जयन्ना **उर्फ** पी. अया (अभि.-3) का है ।

(घ) जयन्ना **उर्फ** पी. अया (अभि.-3) के मोबाइल फोन के अवस्थान को निगरानी/चौकसी पर रखा गया और तद्द्वारा उसे तारीख 12 अगस्त, 2005 को आनंदपुरा से गिरफ्तार किया गया और उसी दिन एक अलग पुलिस दल द्वारा रफ़ीक **उर्फ** मुन्ना (अभि.-2) को बंगलौर से फेलिक्स डी. कोस्टा (अभि. सा. 10) के मकान से गिरफ्तार किया गया । मधुरंता (अभि.-1) ने उसी दिन पुलिस के समक्ष अभ्यर्पण कर दिया । उन्होंने कतिपय स्वैच्छिक कथन किए, जिनके आधार पर बरामदगियां की गईं । जयन्ना **उर्फ** अया (अभि.-3) पुलिस और अन्य व्यक्तियों (बरामदगी साक्षियों) को जंगल के क्षेत्र में लेकर गया और एक स्थान बताया जहां से शव को खोदकर निकाला गया । शरीर का केवल धड़ पाया गया, क्योंकि सिर को काट दिया गया था और निकटवर्ती नंदी नदी में फेंक दिया गया था । प्रहलाद (अभि. सा. 1), श्रीनिवास (अभि. सा. 15), शिवानंद (अभि. सा. 16), देवराज (अभि. सा. 17) और के. केशवमूर्ति (अभि. सा. 22) ने उक्त बरामदगी को देखा और लाश की शनाख्त की । तथापि, पुलिस द्वारा प्रयास करने के बावजूद सिर बरामद नहीं किया जा सका । इसके तुरंत पश्चात् लूटी गई अधिकांश रकम अपीलार्थियों से बरामद कर ली गई । लूट की रकम से खरीदा गया जयन्ना **उर्फ** पी. अया (अभि.-3) का एक मोबाइल फोन भी बरामद किया गया । फेलिक्स डी. कोस्टा (अभि. सा. 10), जिसके मकान से बंगलौर में रफ़ीक (अभि. सा. 2) को गिरफ्तार किया गया था, द्वारा अन्वेषक अधिकारी को मृतक की सोने की एक अंगूठी दी गई ।

(ङ) अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और विचारण आरंभ किया गया ।

(च) न्यायालय में नागेश (अभि. सा. 4) और चन्द्रशेखर (अभि. सा. 6) ने अभियोजन के पक्षकथन की इस सीमा तक संपुष्टि की कि उन्होंने

तारीख 8 अगस्त, 2005 को अपराह्न में लगभग 12.45 बजे मृतक को सभी अपीलार्थियों के साथ देखा था । प्रणेश (अभि. सा. 11) और सदानंद (अभि. सा. 13) ने न्यायिकेत्तर संस्वीकृति, जैसीकि मधुरंता (अभि.-1) द्वारा अभि. सा. 11 के समक्ष की गई थी, के मामले का समर्थन किया । अभि.-1 पुलिस से संपर्क करने के लिए सहायता हेतु अभि. सा. 13 के पास गया था और प्रकट किया था कि उसने रफ़ीक (अभि.-2) और जयन्ना **उर्फ** अया (अभि.-3) के साथ मिलकर मधुसूदन की हत्या की है ।

(छ) शव की बरामदगी का शिवानंद (अभि. सा. 16) और देवराज (अभि. सा. 17) द्वारा समर्थन किया गया । के. बी. श्रीनाथ (अभि. सा. 2) और के. एस. किरन (अभि. सा. 12) ने मधुसूदन को तारीख 8 अगस्त, 2005 को अपराह्न में 12.45 बजे 4,00,000/- रुपए के धन का संदाय करने के बारे में अभिसाक्ष्य देते हुए अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन किया । हेतु के मुद्दे को प्रहलाद (अभि. सा. 1), के. बी. श्रीनाथ (अभि. सा. 2) फेलिक्स डी. कोस्टा (अभि. सा. 10), परनेश (अभि. सा. 11), के. एस. किरन (अभि. सा. 12) और सदानंद (अभि. सा. 13) द्वारा साबित किया गया । शव की शनाख्त की गई और शव की बरामदगी के बारे में अभि. सा. 1 और अभि. सा. 22 द्वारा साक्ष्य दिया गया । इसकी अभिपुष्टि डीएनए परीक्षण द्वारा की गई । अन्वेषण अधिकारी भास्कर राय (अभि. सा. 47) ने सभी बरामदगियों को साबित किया और कैसे अन्वेषण और अपीलार्थियों को गिरफ्तार किया गया था, इसके ब्यौरे प्रस्तुत किए ।

(ज) उपरोक्त के आधार पर, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 302 और 201 के अधीन दोषसिद्ध किया । भारतीय दंड संहिता की धारा 120-क और 120-ख के अधीन कोई दोषसिद्धि नहीं की गई ।

(झ) अपीलार्थियों ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं, जो आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा मृत्यु दंडादेश तथा अन्य दंडादेशों को कायम रखते हुए खारिज कर दी गईं । तथापि, न्यायालय ने एक सरसरी मताभिव्यक्ति की कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 364-क के अधीन आरोप विरचित किया जाना चाहिए था ।

इसलिए यह अपील फाइल की गई है ।

3. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री एन. डी. बी. राजू और श्री अमित कुमार ने उन सभी मुद्दों को उठाया, जो

अपीलार्थियों की ओर से विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए थे और हमारा ध्यान विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलिखित किए गए साक्ष्य की ओर दिलाया । विद्वान् काउंसेलों के अनुसार, मृतक मधुसूदन की मृत्यु कारित करने की बात तो दूर अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि मृतक की मृत्यु मानववध थी या उसे अपीलार्थियों द्वारा अपहृत किया गया था । अभिलेख पर यह साबित करने के लिए किसी सामग्री के अभाव में कि उसका सिर अपीलार्थियों में से किसी अपीलार्थी द्वारा काटा गया था, उनकी दोषसिद्धि दूषित है, विशिष्ट रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थियों ने शव के धड़ को जंगल में गाढ़ा था और सिर को बहती हुई नदी में फेंक दिया था । इतना ही नहीं, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता के विशिष्ट उपबंधों के अधीन की गई दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है, इसका अर्थ यह है कि विचारण न्यायालय ने आरोप उचित रूप से विरचित नहीं किए । यहां तक कि धन, जो अपीलार्थियों से बरामद हुआ दर्शित किया गया है, गाढ़ा गया था और वास्तव में बरामद नहीं हुआ था । अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा कराए गए अधिकांश साक्षी मृतक के नातेदार हैं । साक्षियों के अभिसाक्ष्यों में तात्विक विरोधाभास हैं और कुछ बरामदगियों के बहुत सारे साक्षियों को विधारित किया गया है । केवल पुलिस कार्मिकों को बरामदगी का साक्षी बनाया गया है, हालांकि बहुत सारे व्यक्ति एकत्रित हो गए थे और बरामदगी के साक्षी बनाने के लिए मौजूद थे । शव के उत्खनन के समय तैयार किए गए विडियो को विचारण न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया था और जयन्ना (अभि.-3), जिसकी निशानदेही पर अभिकथित रूप से शव को बरामद किया गया था, को उत्खनन के समय लिए गए फोटोग्राफों में नहीं दिखाया गया है । बरामदगी के एक अभिकथित साक्षी अर्थात् परनेश (अभि. सा. 11) को विचारण न्यायालय द्वारा अविश्वसनीय माना गया है और एक अन्य साक्षी अर्थात् सदानंद (अभि. सा. 13) को उच्च न्यायालय द्वारा अविश्वसनीय माना गया है । वे न्यायिकेतर संस्वीकृति के भी साक्षी हैं । ऐसी तथ्यात्मक-स्थिति में उक्त साक्षियों में से कोई भी विश्वसनीय नहीं है । किसी भी परिस्थिति में अपीलार्थियों को मृत्यु दंडादेश नहीं दिया जाना चाहिए था । इस प्रकार, इन अपीलों को मंजूर किया जाना चाहिए ।

4. इसके विपरीत, राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील देते हुए अपीलों का विरोध किया कि अन्वेषक अधिकारी से प्रतिपरीक्षा में न तो शव के उत्खनन के समय तैयार की गई

विडियोग्राफी के बारे में और न ही उस समय लिए गए फोटोग्राफों में जयन्ना (अभि.-3) की अनुपस्थिति के बारे में इस न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाए गए प्रश्नों में से कोई प्रश्न पूछा गया था । विधि पुलिस कार्मिक को बरामदगी साक्षी बनाने के लिए प्रतिषिद्ध नहीं करती है और अपीलार्थियों द्वारा उठाई गई अधिकांश विसंगतियां तुच्छ प्रकृति की हैं जो मामले के गुणागुण को तात्विक रूप से प्रभावित नहीं करती हैं । इस प्रकार, ये अपीलें खारिज की जानी चाहिए ।

5. हमारी यह सुविचारित राय है कि दोनों निचले न्यायालयों ने अति सावधानीपूर्वक साक्ष्य पर विचार किया है और इसका मूल्यांकन किया है । अभियोजन ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए निम्नलिखित परिस्थितियों का अवलंब लिया है :–

I. अपराध का हेतु लूटना था और इसके अनुसरण में अभियुक्तों ने मृतक की हत्या की, उसे लूटा, उसका सिर काटा और धड़ को गाढ़ दिया । सिर और आयुध को नंदी नदी में फेंक दिया गया ।

II. अभि. सा. 11 ने हेतु के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है और 39,000/- रुपए नकद और एक मोबाइल फोन इसकी सिम सहित प्रस्तुत किया है, जो अभि.-1 द्वारा उसके पास जमा कुल 50,000/- रुपए की नकदी में से खरीदा गया था ।

III. अभि.-1 ने अभि. सा. 13 के समक्ष न्यायिकेतर संस्वीकृति उससे यह अनुरोध करते हुए की थी कि उसे बचा ले और उसके परामर्श पर पुलिस के समक्ष अभ्यर्पण किया था ।

IV. अभि.-3 द्वारा शव के अवस्थान के बारे में स्वैच्छिक प्रकटन करना और वहां से शव को खोद कर निकाला जाना ।

V. अभि. सा. 1 ने शव के धड़ की गोदन (टट्टू) से शनाख्त की थी । डी. एन. ए. रिपोर्ट से शव मृतक/अभि. सा. 22 के पुत्र का होने की पुष्टि हुई ।

VI. मरणोत्तर परीक्षा और वह रीति, जिसमें शव पाया गया था, अखंडनीय रूप से एक मानववध मृत्यु की ओर संकेत करते हैं ।

VII. अभि.-2 को अभि. सा. 10 के मकान से गिरफ्तार किया गया था और उसने अभि.-2 द्वारा छोड़ी गई दो निष्प्रयोजित वस्तुएं और एक सोने की चेन (तात्विक वस्तु-5) पुलिस के समक्ष प्रस्तुत की

थीं । अभि. सा. 1 ने शनाख्त की थी कि उक्त सोने की चेन मृतक की है ।

VIII. अभि.-1 के मकान से 1,01,000/- रुपए और अभि.-2 के मकान के तबेले में से 2,02,700/- रुपए की बरामदगी होना, जिसका कोई स्पष्टीकरण और हिसाब-किताब नहीं दिया गया है ।

IX. अभि.-3 से एक मोबाइल सैट (तात्विक वस्तु-14) की बरामदगी जिनकी अभि. सा. 1 द्वारा मृतक का होने की शनाख्त की गई ।

X. मृतक को तारीख 8 अगस्त, 2005 को अपराह्न में 12.30 बजे अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने की परिस्थिति, जैसाकि अभि. सा. 4 द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया है और वह मृतक तथा अभियुक्तों से परिचित था ।

6. इस न्यायालय ने पारिस्थितिक साक्ष्य के मामलों पर अनेक बार विचार किया है । सतत रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि केवल पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । अभियोजन पक्षकथन की सफलता या असफलता स्वयं उसके साक्ष्य पर निर्भर होनी चाहिए और वह अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत की गई प्रतिरक्षा की दुर्बलता से बल प्राप्त नहीं कर सकता है । तथापि, किसी मिथ्या प्रतिरक्षा की सहायता न्यायालय को आश्वस्त करने के लिए केवल वहां ली जा सकती है जहां पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला की विभिन्न कड़ियां स्वयं में पूर्ण हों । वे परिस्थितियां, जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूर्णतः सिद्ध होनी चाहिएं । ऐसे सिद्ध तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता के संगत होने चाहिएं, अर्थात्, वे स्पष्ट करने योग्य न हों या इसके सिवाय कि अभियुक्त दोषी है किसी अन्य परिकल्पना को इंगित न करते हों । परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिएं । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य ऐसी प्रकृति का होना चाहिए कि यह अभियुक्त की दोषिता को संधार्य बनाता हो (**शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश**[2], **परमजीत सिंह** उर्फ **पम्मा** बनाम **उत्तराखंड राज्य**[3] वाले मामले देखें) ।

---

[1] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622.

[2] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 1000.

[3] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 200.

7. दोनों निचले न्यायालयों ने उपर्युक्त परिस्थितियों को पूर्वोक्त विधिक प्रतिपादनाओं को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपीलार्थियों ने ही अपराध किया था । हमें तथ्य के ऐसे समवर्ती निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता है ।

8. अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि साक्षियों के अभिसाक्ष्यों में विसंगतियां और विरोधाभास हैं, जैसे वह समय जब मृतक को अंतिम बार अपीलार्थियों के साथ देखा गया था और स्थानों की दूरियां आदि मेल नहीं खाते हैं । इस प्रकार, उनके साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।

9. **रोहताश कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिसाक्ष्यों में की विसंगतियों के मुद्दे पर विचार किया था । यह स्थिर विधिक प्रतिपादना है कि किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय नगण्य बातों संबंधी ऐसी विसंगतियां, जो अभियोजन के पक्षकथन के मर्म को प्रभावित नहीं करती, साक्ष्य को समग्रतः नामंजूर करने में न्यायालय को तत्परता नहीं दिखानी चाहिए । इसलिए ऐसे असंगत ब्यौरों की अनदेखी कर दी जानी चाहिए, जिनसे साक्षी की विश्वसनीयता को किसी प्रकार से ठेस नहीं पहुंचती हो । न्यायालय को यह परीक्षा करनी चाहिए कि क्या साक्ष्य को समग्र रूप में पढ़ने पर इसमें सत्यता का आभास प्रतीत होता है । जब एक बार यह धारणा बन जाती है, तो न्यायालय के लिए निस्संदेह यह आवश्यक है कि साक्ष्य की, विशिष्ट रूप से संपूर्ण साक्ष्य में बताई गई कमियों, त्रुटियों और दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए, संवीक्षा करे और यह पता लगाने के लिए उनका मूल्यांकन करे कि क्या यह साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य के साधारण नियम के विरुद्ध है या नहीं और क्या साक्ष्य का पूर्ववर्ती मूल्यांकन डगमगाता है, जिससे कि इसे अविश्वसनीय ठहराया जा सके । इस प्रकार, न्यायालय से ऐसे लोपों, विरोधाभासों और विसंगतियों को असम्यक् महत्व देना अनुमित नहीं है जो मामले की तह तक नहीं जाते हैं और अभियोजन साक्षी के मूल वृत्तांत को नहीं डगमगाते हैं । **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **एम. के. एंथनी**[2], **पुलिस निरीक्षक की मार्फत राज्य** बनाम **स्वर्णन् और एक अन्य**[3] और **विजय** उर्फ

---

[1] जे. टी. (2013) 8 एस. सी. 181.

[2] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 48.

[3] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 152.

चीनी बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामलों में इसी प्रकार का मत दोहराया गया है ।

10. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि कुछ बरामदगियों के समय हालांकि बहुत सारे लोग उपलब्ध थे, किंतु केवल पुलिस कार्मिक ही बरामदगी के साक्षी बनाए गए । इस प्रकार, संपूर्ण अभियोजन पक्षकथन संदेहास्पद हो जाता है ।

11. "साक्षी" शब्द से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो न्यायालय में मौखिक कथन करके, या लिखित में कथन देकर, या अन्यथा सुसंगत तथ्यों के विषय में अभिसाक्ष्य देकर जानकारी प्रदान करने के लिए समर्थ है ।

12. **प्रदीप नारायण मडगांवकर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा की अपेक्षा और किसी पुलिस साक्षी के साक्ष्य की संपुष्टि अपेक्षित है या नहीं, के मुद्दे पर विचार किया था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि ऐसे साक्ष्य की अवश्य ही गहराई से संवीक्षा की जानी चाहिए, तथापि, पुलिस पदधारियों के साक्ष्य को केवल इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि वे पुलिस से संबंधित हैं और या तो अन्वेषण या अभियोजन में हितबद्ध हैं । तथापि, जहां तक संभव हो, तात्विक विशिष्टियों पर उनके साक्ष्य की संपुष्टि की ईप्सा की जानी चाहिए (**परस राम** बनाम **हरियाणा राज्य**[3], **बलबीर सिंह** बनाम **राज्य**[4], **कल्पनाथ नाय** बनाम **राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत)**[5], **एम. प्रभूलाल** बनाम **सहायक निदेशक, राजस्व आसूचना निदेशालय**[6] और **रविन्द्रन्** बनाम **सीमाशुल्क अधीक्षक**[7] वाले मामले भी देखें) ।

13. इस प्रकार, कोई साक्षी सामान्यतः तब तक स्वतंत्र साक्षी समझा जाता है जब तक कि उसका उद्‌भव ऐसे स्रोतों से न हुआ हो, जिनका दूषित होना संभाव्य है और इसका प्रायिक रूप से यह अर्थ है कि उक्त साक्षी के पास अभियुक्त के विरुद्ध ऐसी दुश्मनी बरतने का हेतुक हो ताकि

---

[1] (2010) 8 एस. सी. सी. 191.
[2] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1930.
[3] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1212.
[4] (1996) 11 एस. सी. सी. 139.
[5] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 201.
[6] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4311.
[7] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2040.

वह उसे मिथ्या रूप से आलिप्त कर सके । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, इस आशय का ऐसा कोई प्रतिषेध नहीं हो सकता है कि कोई पुलिसकर्मी साक्षी नहीं हो सकता है या उसके अभिसाक्ष्य का, यदि वह विश्वासोत्पादक है, अवलंब नहीं लिया जा सकता हो ।

14. **लक्ष्मी बाई (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत और एक अन्य** बनाम **भगवंतबुआ (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इसी प्रकार के एक मुद्दे की परीक्षा की थी और यह अभिनिर्धारित किया :–

> "इसके अतिरिक्त, इस स्थिर विधिक प्रतिपादना की बाबत कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि यदि कोई पक्षकार किसी साक्षी के कथन की शुद्धता के विषय में कोई संदेह उठाना चाहता है, तो उक्त साक्षी को, उसके कथन के उस भाग की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते हुए जिसे असत्य होने के कारण दूसरे पक्षकार द्वारा आक्षेपित किया गया है, अपने कथन को स्पष्ट करने का अवसर दिया जाना चाहिए । ऐसा किए बिना उसकी विश्वसनीयता को अधिक्षिप्त करना संभव नहीं है । ऐसी विधि का उन्नयन साक्ष्य अधिनियम की धारा 138 में प्रतिष्ठापित उन कानूनी उपबंधों को ध्यान में रखते हुए किया गया है, जो विरोधी पक्षकार को किसी साक्षी की उसके द्वारा अपनी आरंभिक मुख्य परीक्षा के दौरान प्रस्तुत की गई सूचना के विषय में प्रतिपरीक्षा करने के लिए समर्थ बनाते हैं, और इस उपबंध की परिधि साक्ष्य अधिनियम की धारा 146 से और बढ़ जाती है, जो अन्य बातों के साथ-साथ किसी साक्षी से उसकी सत्यता की जांच करने के लिए प्रश्न पूछने के लिए अनुज्ञात करती है । उसके पश्चात्, उसके साक्ष्य के अचुनौतीपूर्ण भाग का अवलंब लिया जाना चाहिए और इसका कारण यह है कि साक्षी के लिए उस भाग के विषय में उन परिस्थितियों की बाबत, जो यह इंगित करती हैं कि उसके द्वारा प्रस्तुत किया गया घटनाओं का वृत्तांत विश्वास किए जाने योग्य नहीं है और स्वयं साक्षी विश्वासप्रद नहीं है, उससे प्रश्न किए बिना इसका स्पष्टीकरण देना या किसी संदेह पर विस्तारपूर्वक कथन करना असंभव है । इस प्रकार, यदि कोई पक्षकार किसी साक्षी को अधिक्षिप्त करना चाहता है, तो उसे साक्षी को साक्षी कठघरे में, पूर्ण और उचित

[1] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 1204.

स्पष्टीकरण देने के लिए, अवश्य पर्याप्त अवसर प्रदान करना चाहिए । ऐसा साक्षियों के साथ व्यवहार करते समय निष्पक्षता और औचित्य को सुनिश्चित करने के लिए करना अनिवार्य है । [खेम चंद **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य (ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 226), उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** नाहर सिंह (मृत) और अन्य (ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1328), राजिन्द्र प्रसाद (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत **बनाम** दर्शना देवी (श्रीमती) (ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3207) और सुनील कुमार और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य (ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 1096) वाले मामले देखें] ।"

15. अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 और 176(3) के उपबंधों का पालन नहीं किया गया था और अन्वेषक अधिकारी द्वारा शव को कार्यपालक मजिस्ट्रेट की अनुज्ञा के बिना खोदकर निकाला गया था और इसलिए अन्वेषण विधि के अनुसार नहीं किया गया था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 की उपधारा (1) में अन्वेषक अधिकारी पर केवल यह बाध्यता डाली गई है कि मृत्यु-समीक्षा करने के लिए सशक्त कार्यपालक मजिस्ट्रेट को सूचित करे, किंतु विधि में ऐसा कुछ नहीं है जो यह उपबंध करती हो कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट की लिखित में अनुज्ञा के बिना या उसकी अनुपस्थिति में अन्वेषण न किया जा सकता हो । अन्यथा भी, "जब तक राज्य सरकार द्वारा विहित किसी नियम या जिला अथवा उप-मण्डल मजिस्ट्रेट के किसी सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निदिष्ट न हो" शब्दों से यह बात विशेषित हो जाती है । मृत्यु-समीक्षा की कार्यवाही का उद्देश्य केवल यह अभिनिश्चित करना है कि क्या व्यक्ति अस्वाभाविक परिस्थितियों में मरा है या अस्वाभाविक मृत्यु है और यदि ऐसा है, तो मृत्यु का कारण क्या है । इसके अतिरिक्त, मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट एक सारभूत साक्ष्य नहीं है और केवल विचारण के दौरान परीक्षा कराए गए मृत्यु-समीक्षा के साक्षियों की बात का खंडन करने के लिए ही उपयोग किया जा सकता है । न तो मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट और न ही मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट को मूल या सारभूत साक्ष्य की संज्ञा दी जा सकती है और इस प्रकार इनमें प्रकट होने वाली किसी विसंगति को ऐसी घातक या संदेहास्पद परिस्थिति नहीं कहा जा सकता है, जिससे अभियुक्त को संदेह का फायदा प्राप्त हो सके (**पूडा नारायण और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1], **रामेश्वर दयाल और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश**

[1] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1252.

राज्य[1], **कुलदीप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2], **जार्ज और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[3], **सुरेश राय और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[4] तथा **मुंशी प्रसाद और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[5] वाले मामले देखें) ।

16. जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 176 के उपबंधों का संबंध है, उक्त उपबंध तब लागू होते हैं जब कोई व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में मर जाता है और यह संदेह है कि मृत्यु स्वयं पुलिस द्वारा कारित की गई है । अन्य दशाओं में भी, जैसाकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 176 में उपबंधित है, मजिस्ट्रेट जांच कर सकेगा । यदि अपीलार्थियों की दलील पर विचार किया जाए कि इसमें कुछ सार है, तो भी इससे उनके पक्ष में निष्कर्ष नहीं निकलेगा । यह एक स्थिर विधिक प्रतिपादना है कि अनुचित या अवैध साधनों द्वारा एकत्रित किया गया साक्ष्य भी, यदि यह सुसंगत है और इसकी असलियत साबित हो जाती है, ग्राह्य है । तथापि, न्यायालय को ऐसे साक्ष्य की संवीक्षा करते समय सचेत रहना होगा । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, इसे अन्वेषक अधिकारी की ओर से की गई प्रक्रियात्मक चूक का मामला माना जा सकता है और मामले को तब तक त्यक्त नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि अपीलार्थी न्यायालय का यह समाधान नहीं कर देता कि उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है (**उमेश कुमार** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[6] और **पूरन मल** बनाम **आय कर निरीक्षण निदेशक, नई दिल्ली और अन्य**[7] वाले मामले देखें) ।

17. कई साक्षियों ने मृतक को घटना से पूर्व अपीलार्थियों के साथ देखे जाने का अभिसाक्ष्य दिया है । ऐसे मामलों में, जहां घटना से ठीक पूर्व अभियुक्त को अंतिम बार मृतक-विपदग्रस्त के साथ (अंतिम बार एकसाथ देखे जाने का सिद्धांत) देखा गया था, वहां अभियुक्त का यह कर्तव्य हो जाता है कि उन परिस्थितियों को स्पष्ट करे जिनमें विपदग्रस्त की मृत्यु

---

[1] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1558.
[2] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1944.
[3] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1376.
[4] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 2207.
[5] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3031.
[6] जे. टी. (2013) 12 एस. सी. 213.
[7] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 348.

हुई (**निका राम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[1] और **गणेश लाल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले देखें) ।

18. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन होने वाली परीक्षा के समय अभियुक्त के लिए यह आबद्धकर है कि उससे सहयुक्त अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण प्रस्तुत करे, और न्यायालय को पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में भी ऐसे स्पष्टीकरण पर यह विनिश्चय करने के लिए अवश्य विचार करना चाहिए कि क्या परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण है या नहीं । [**मुशीर खान** उर्फ **बादशाह खान और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[3] और **डा. सुनील कलिफोर्ड डेनियल** (उपरोक्त) वाले मामले देखें]

19. उच्च न्यायालय ने सदानंद (अभि. सा. 13) के संबंध में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "यह हो सकता है कि अभि. सा. 11 सह अपराधी के रूप में सामने आया हो, किंतु तो भी अभि. सा. 13 के साक्ष्य से अभि.-1 की न्यायिकेतर संस्वीकृति निश्चित रूप से सिद्ध होती है । उपरोक्त साक्ष्य के विश्लेषण से अभि.-1 से अभि.-3 की दोषिता निश्चित रूप से सिद्ध होती है । इसलिए दोषसिद्धि का आदेश ठीक और उचित है ।"

20. इसी प्रकार, विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 11 के बारे में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "यदि प्रथम अभियुक्त द्वारा कथित रूप से अभि. सा. 13 के समक्ष की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति को छोड़ भी दिया जाए, तो भी अभि. सा. 11 के समक्ष किए गए कथन से यह दर्शित होता है कि घटना के तुरंत पश्चात् प्रथम अभियुक्त मधुरंता, जिसने इसी अपराध के लिए पहले अभि. सा. 11 से सहायता मांगी थी, उससे रात्रि के दौरान उसके मकान में मिला और 50,000/- रुपए सुरक्षित अभिरक्षा में रखने के लिए सौंपे और उससे यह अनुरोध भी किया कि इस बारे में किसी व्यक्ति को न बताए ।"

21. यदि निचले न्यायालयों के पूर्वोक्त निष्कर्षों को एकसाथ पढ़ा

---

[1] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2077.

[2] (1992) 3 एस. सी. सी. 106.

[3] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 762.

जाए, तो उनमें से किसी न्यायालय ने भी दोनों साक्षियों में से किसी को भी अविश्वसनीय नहीं माना है । इसलिए हम अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इन दलीलों में कोई बल नहीं पाते हैं कि उक्त साक्षियों में से एक साक्षी को विचारण न्यायालय द्वारा अविश्वसनीय पाया गया है और दूसरे को उच्च न्यायालय द्वारा और इस प्रकार उनमें से किसी पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता है । निचले न्यायालयों ने यह राय व्यक्त की है कि यदि उनमें से एक साक्षी के साक्ष्य को छोड़ भी दिया जाए, तो भी दूसरे साक्षी का अभिसाक्ष्य अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करने के लिए पर्याप्त है ।

22. तथापि, मामले के तथ्यों में मृत्यु की शास्ति देना आवश्यक नहीं है । मृत्यु जैसी अधिकतम शास्ति चरम आपराधिता के घोरतम मामलों के सिवाय दिए जाने की आवश्यकता नहीं है । मृत्यु की शास्ति का विकल्प चुनने से पूर्व अपराधी की परिस्थितियों के साथ-साथ अपराध की परिस्थितियों पर भी विचार किया जाना चाहिए और इसका कारण यह है कि आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है । मृत्यु दंडादेश की शास्ति केवल ऐसे मामले में दी जा सकती है, जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आजीवन कारावास का अधिरोपण अपराध की सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पूर्णतः अपर्याप्त है । गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों का तुलन-पत्र बनाया जाना चाहिए और ऐसा करने में न्यूनकारी परिस्थितियों को पूरा अधिमान दिया जाना चाहिए तथा विकल्प चुनने से पूर्व गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के बीच एक न्यायसंगत संतुलन बनाया जाना चाहिए । मृत्यु की शास्ति अधिनिर्णीत करने के लिए विशेष कारण देने की शर्त का शाब्दिक रूप से अर्थान्वयन नहीं किया जाना चाहिए अपितु यह मृत्यु की शास्ति का समर्थन करने वाले और निर्विवाद बनाने वाले तर्क की मूल विशेषताओं का समाधान करे । परिस्थितियां और अपराध कारित करने की रीति ऐसी होनी चाहिए कि इससे न्यायालय की न्यायिक अंतश्चेतना इस सीमा तक झकझोरती हो कि एकमात्र और अपरिहार्य निष्कर्ष मृत्यु की शास्ति अधिनिर्णीत करने का निकलना चाहिए (**बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **माछी सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2], **देवेन्द्र पाल सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली**

---

[1] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 898.

[2] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 957.

राज्य,[1] **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **गोरक्षा अंबाजी अडसुल**[2] और **नील कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य**[3] वाले मामले देखें) ।

23. **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "20. 'विरल से विरलतम मामला' तब बनता है जब कोई अपराधी समाज के सामंजस्यपूर्ण और शातिंपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए एक खतरा और भय बन जाए । अपराध जघन्य और पाश्विक हो सकता है किंतु 'विरल से विरलतम मामले' के प्रवर्ग में न आता हो । यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं रहना चाहिए कि अभियुक्त को सुधारा या पुनर्वासित नहीं किया जा सकता है और उसके द्वारा आपराधिक हिंसा के ऐसे कृत्य जारी रखने की संभावना है जिनसे समाज को सतत भय बना रहेगा । अभियुक्त समाज के लिए खतरा है और इसके शांतिपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए खतरा बना रहेगा । वह रीति, जिसमें अपराध कारित किया जाता है, अवश्य ही ऐसी होनी चाहिए कि इसके परिणामस्वरूप समुदाय उग्र और अत्यंत आक्रोशित हो सकता है और समाज की सामूहिक अंतश्चेतना को हिला कर रह जाए । जहां कोई अभियुक्त किसी एकाएक प्रकोपन पर कार्य नहीं करता है और स्वयं को जानबूझकर एक योजनाबद्ध अपराध में अंतर्ग्रस्त करता है और सावधानीपूर्वक इसे निष्पादित करता है, वहां ऐसे पैशाचिक अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश अति उचित दंड होगा । मृत्यु दंडादेश वहां भी दिया जा सकेगा जहां अपराध के शिकार बेकसूर बच्चे और असहाय स्त्रियां हों । इस प्रकार, यदि अपराध ऐसी अति क्रूर और अमानवीय रीति में कारित किया जाता है जो अत्यंत पाश्विक, विलक्षण, पैशाचिक, विभत्स और कायरतापूर्ण है और जहां अपराधी के कृत्य से समाज का संपूर्ण नैतिक तानाबाना प्रभावित होता है, उदाहरण के लिए, जहां अपराध सत्ता के लिए या

---

[1] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1661.

[2] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 2689.

[3] (2012) 5 एस. सी. सी. 766.

[4] (2011) 12 एस. सी. सी. 56.

राजनैतिक महत्वाकांक्षा के लिए कारित किया जाता है या संगठित आपराधिक क्रियाकलापों में अंतर्ग्रस्त है, वहां मृत्यु दंडादेश दिया जाना चाहिए ।"

24. प्रस्तुत मामले में अंतर्वलित तथ्य और परिस्थितियां इसमें ऊपर यथा स्पष्टीकृत विरल से विरलतम मामले की अपेक्षा को पूरा नहीं करते हैं और हमारा यह सुविचारित मत है कि यह ऐसा उपयुक्त मामला नहीं है जहां अपीलार्थियों को दिए गए मृत्यु दंडादेश की अभिपुष्टि की जाए । **स्वामी श्रद्धानंद** उर्फ **मुरली मनोहर मिश्रा** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय, जिसका इस न्यायालय द्वारा पश्चात्वर्ती मामलों में अनुसरण किया गया है, जैसाकि **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **संजय कुमार**[2] और **गुरवैल सिंह** उर्फ **गाला** बनाम **पंजाब राज्य**[3] वाले मामलों में के निर्णयों से स्पष्ट है, को ध्यान में रखते हुए वर्तमान प्रवृत्ति पर विचार करते हुए हमारी यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थियों को परिहार के बिना 30 वर्ष का कारावास अधिनिर्णीत करने से न्याय की पूर्ति हो जाएगी ।

25. पूर्वोक्त उपांतरणों के साथ इन अपीलों का निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

जस.

---

[1] (2008) 13 एस. सी. सी. 767.

[2] (2012) 8 एस. सी. सी. 537.

[3] (2013) 2 एस. सी. सी. 713.

उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

महेश नारायण

6 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति (श्रीमती) ज्ञान सुधा मिश्रा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 309 और 16 [सपठित उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा (प्रथम संशोधन) नियम, 1990 – नियम 1] – सहायक निदेशक के पद पर प्रोन्नति – उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा नियम, 1987 के अधीन विज्ञान अधिकारी के पद पर संशोधन नियम, 1990 की अधिनियमिति और प्रवर्तन के पूर्व प्रत्यर्थियों का सेवा में पांच वर्ष पूरा करना – चूंकि प्रत्यर्थियों को विज्ञान अधिकारी के पद पर कार्य करने का पांच वर्ष का अपेक्षित अनुभव है और उन्होंने संशोधन नियम, 1990 के प्रकाशित किए जाने से पूर्व पांच वर्ष की सेवा की अवधि पहले ही पूरी कर ली है, अतः उन्हें सहायक निदेशक के अगले पद पर प्रोन्नत किए जाने के मामले पर विचार करने के लिए पात्र अभिनिर्धारित किया जा सकता है ।

साधारण खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10) – धारा 5 – नियमों की प्रभावी तारीख – राजपत्र में अधिसूचना का प्रकाशित किया जाना – नियमों को उनके तैयार किए जाने की तारीख से प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है किंतु वे विधिक रूप से समर्थ माने जाएंगे और इस प्रकार वे प्रवर्तनीय तब होंगे जब नियमों को प्रभावी बनाया जाए और जिस तारीख को नियम प्रभावी बनाए जाएंगे, वह तारीख राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियम प्रकाशित किए जाने की तारीख मानी जाएगी ।

इस मामले में, प्रत्यर्थी ने सहायक निदेशक के पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए लोक सेवा ट्रायब्युनल, लखनऊ के समक्ष आवेदन किया । ट्रायब्युनल ने प्रत्यर्थियों के पक्ष में आदेश पारित किया । इस आदेश को अभिखंडित कराने के लिए अपीलार्थी उत्तर प्रदेश राज्य और गृह विभाग ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष उत्प्रेषण रिट फाइल की । उच्च न्यायालय ने ये दोनों रिट याचिकाएं खारिज कर दीं । इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश राज्य और गृह विभाग ने उच्च

न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर, उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की हैं । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि यह दलील पूर्णतया खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि नियमों को उनके तैयार किए जाने की तारीख से प्रभावी नहीं बनया जा सकता है किंतु वे विधिक रूप से समर्थ माने जाएंगे और इस प्रकार वे प्रवर्तनीय तब होंगे जब नियमों को प्रभावी बनाया जाए और जिस तारीख को वे नियम प्रभावी बनाए जाएंगे, निःसंदेह वह तारीख राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियम प्रकाशित किए जाने की तारीख मानी जाएगी । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय को प्रत्यर्थियों के इस अभिवाक् में कोई कमी दिखाई नहीं देती है कि उनके पास विज्ञान अधिकारी के पद पर कार्य करने का पांच वर्ष का अपेक्षित अनुभव है क्योंकि उन्होंने संशोधित नियम, 1990 के प्रकाशित किए जाने से पांच वर्ष की सेवा की अवधि पहले ही पूरी कर ली है, अतः उन्हें सहायक निदेशक के अगले पद पर प्रोन्नत किए जाने के मामले पर विचार करने हेतु ठीक ही पात्र अभिनिर्धारित किया गया है । इस प्रकार न्यायालय ने इस आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत का अनुमोदन किया और उसे कायम रखा । यदि न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना होता कि आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा समनुदेशित कारण विपथन से ग्रसित हैं क्योंकि प्रत्यर्थियों ने वर्ष 1989 में विज्ञान अधिकारी का पद ग्रहण किया था जिसके कारण वर्ष 1990 में उनके पास अपेक्षित अनुभव नहीं था, तब भी इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि प्रत्यर्थियों को तारीख 16 सितंबर, 1985 को विज्ञान अधिकारी के पद पर तदर्थ रूप में प्रोन्नत किया गया है और यह नियुक्ति केवल एक वर्ष के लिए ही प्रभावी होगी किंतु उच्च न्यायालय ने यह भी आदेश किया है कि सेवा नियम, 1987 के प्रकाशित किए जाने तक पदधारी प्रोन्नत पद पर बने रहने के हकदार हैं । इस प्रकार प्रत्यर्थियों को प्रोन्नत पदों पर बने रहने का अधिकार है क्योंकि नियम, 1987 अंतिम रूप से प्रकाशित हो गए थे और वे 1987 में प्रभावी हो गए थे जिससे यह स्पष्ट होता है कि कुल पदों के 25% पद ऐसे स्थायी विज्ञान अधिकारियों में से भरे जाने थे जिन्हें पांच वर्ष की सेवा का अनुभव था और एक परंतुक भी जोड़ा गया जो इस प्रकार अधिकथित है – "यदि स्थायी विज्ञान अधिकारी उपलब्ध नहीं हैं, तब ऐसे अस्थायी और स्थानापन्न कार्मिकों के मामले पर उक्त पदों पर प्रोन्नत किए जाने हेतु यह विचार किया जा सकता है कि वे

निचले निकटतम पद पर स्थायी हैं ।" इसके पश्चात् नियम, 1987 वर्ष 1990 में संशोधित किए गए और उन्हें तारीख 20 अक्तूबर, 1990 के उत्तर प्रदेश सरकार के राज्यपत्र में प्रकाशित किया गया और यह अधिकथित किया गया कि पश्चात्वर्ती प्रोन्नति केवल सीधी भर्ती द्वारा ही की जा सकती है । किंतु यह अनुज्ञात नहीं किया गया कि इस संशोधन से प्रोन्नति के लिए किया गया प्रत्यर्थियों का दावा प्रभावित हो, और इससे ऐसे कर्मचारी के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े जो संशोधन नियम, 1990 की अधिनियमिति और प्रवर्तन के पूर्व पात्रता के पद पर हो । चूंकि प्रत्यर्थी नियम, 1987 के निबंधनों में विज्ञान अधिकारी के पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए पात्र और हकदार थे, इसलिए उनके उस पद के अनुभव को अनदेखा नहीं किया जा सकता था ताकि उन्हें नियम, 1990 के आधार पर सहायक निदेशक के पश्चात्वर्ती पद पर प्रोन्नत किए जाने के फायदे से इनकार किया जा सके और यह नियम उन रिक्तियों को भरे जाने के लिए लागू होगा जो वर्ष 1990 के पश्चात् सृजित हुई थीं । निर्मल चंद्र भट्टाचार्यजी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ठीक प्रकार लागू होते हैं क्योंकि 1990 के पश्चात्वर्ती संशोधन के अधीन यह अधिकथित किया गया है कि सहायक निदेशक न्यायालयिक विज्ञान के सभी पद सीधी भर्ती द्वारा भरने के लिए उन प्रत्यर्थियों के मामलों में लागू नहीं किए जा सकते थे जो पहले से विज्ञान अधिकारी के पद पर कार्य कर रहे थे और इस प्रकार वे नियम, 1987 के निबंधनों में विज्ञान अधिकारी के रूप में पांच वर्ष की सेवा पूरी करने के पश्चात् सहायक निदेशक के 25% पद के प्रोन्नत कोटे के लिए पात्र थे, अतः इस पद पर उनका पांच वर्ष का अनुभव इस आधार पर व्यर्थ नहीं हो सकता था कि यह संशोधन वर्ष 1990 में किया गया था ताकि सहायक निदेशक के सभी पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाएं । इस मत के समर्थन में, प्रत्यर्थियों के काउंसेल ने बी. एल. गुप्ता और एक अन्य बनाम दिल्ली नगर निगम वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का भी अवलंब लिया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि कोई भी ऐसी रिक्ति जो वर्ष 1995 के पश्चात् सृजित हुई है, वह नियम, 1987 के अनुसार भरी जानी थी किंतु ऐसी रिक्तियां जो 1995 के पूर्व सृजित हुई थीं वे नियम, 1978 के अनुसार भरी जानी थी । उपर्युक्त विश्लेषण के परिणामस्वरूप, न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय ने यह मत

ठीक ही व्यक्त किया है कि प्रत्यर्थी नियम, 1987 के अधीन प्रोन्नति द्वारा भरे जाने वाले 25% कोटे के प्रति सहायक निदेशक के पद पर प्रोन्नत किए जाने के पात्र हैं क्योंकि यदि उत्तर प्रदेश सरकार के राजपत्र में नियमों के प्रकाशित किए जाने की तारीख से गणना की जाए तो वे विज्ञान अधिकारी के पद पर बने रहने के पांच वर्ष के अपेक्षित अनुभव की शर्त पूरी करते हैं । किंतु उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, यह अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि यदि यह मान लिया जाए कि प्रत्यर्थियों ने विज्ञान अधिकारी के पद पर किसी भी कारण से पांच वर्ष का अनुभव पूरा नहीं किया है और वे इस कारण आगे प्रोन्नति किए जाने के लिए अपात्र हो जाते हैं, तब भी उन्हें यह कानूनी संरक्षा और उक्त नियम के परंतुक के फायदे प्राप्त हैं जिनके अंतर्गत यह अधिकथित किया गया है कि यदि स्थायी विज्ञान अधिकारी 25% कोटे के अधीन उपलब्ध नहीं है तब ऐसे अस्थायी और स्थानापन्न कार्मिकों को उक्त पदों के लिए प्रोन्नत किए जाने पर विचार किया जाना चाहिए जो निकटतम निचले पद पर स्थायी रूप से कार्य कर रहे हैं । यह सुस्थापित है कि प्रत्यर्थियों के पद की निकटतम निचले पद पर पहले ही पुष्टि की जा चुकी है जब उन्हें विज्ञान अधिकारी के पद पर प्रोन्नत किया गया था और चूंकि वे परंतुक के फायदे के लिए हकदार हैं जिसके अधीन यह अधिकथित किया गया है कि अस्थायी विज्ञान अधिकारी जो निकतम निचले पद पर स्थायी रूप से कार्य कर रहे हैं उनके मामले पर प्रोन्नत किए जाने के लिए विचार किया जा सकता है, प्रत्यर्थियों को यह अधिकार है कि उन्हें प्रोन्नत किए जाने के लिए विचार किया जाना चाहिए क्योंकि वे विज्ञान अधिकारी के पद पर बने हुए हैं और उन्होंने तारीख 20 अक्तूबर, 1990 को प्रवृत्त होने वाले संशोधित नियम के पूर्व पांच वर्ष का अनुभव पूरा कर लिया है और इस संशोधित नियम के अधीन यह अधिकथित किया गया है कि सहायक निदेशक के सभी पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाएंगे । इस प्रकार, इस अतिरिक्त और ठोस कारण तथा उच्च न्यायालय द्वारा समनुदेशित कारणों के आधार पर न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय तथा ट्रायब्युनल के आदेशों में कोई कमी नहीं है और इन न्यायालयों ने प्रत्यर्थियों के पक्ष में यह अभिनिर्धारित करते हुए निदेश दिया है कि अपीलार्थी/उत्तर प्रदेश राज्य सहायक निदेशक न्यायालयिक विज्ञान के पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए उनकी पात्रता पर विचार करे और उन्हें, यदि वे पात्र पाए जाएं, पारिणामिक फायदे प्रदान करें । (पैरा 10,11,13,14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1998]	(1998) 9 एस. सी. सी. 223 : **बी. एल. गुप्ता और एक अन्य** बनाम **दिल्ली नगर निगम** ;	13
[1991]	(1991) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 363 : **निर्मल चंद्र भट्टाचार्यजी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ।	12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल अपील सं. 2208 - 2209.

2007 की रिट याचिका सं. 1049 और 1050 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ की खंड न्यायपीठ के तारीख 5 सितंबर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री पी. एन. मिश्रा (वरिष्ठ अधिवक्ता), संजय विसेन, मनोज कुमार द्विवेदी, अविरल शुक्ला, एस. मिश्रा और गुन्नम वेंकटेश्वर राव

प्रत्यर्थियों की ओर से — श्री महेश श्रीवास्तव (मैसर्स आई. एम. नानावती एसोशिएट्स की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) ज्ञान सुधा मिश्रा ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) मिश्रा – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. अपीलार्थी-उत्तर प्रदेश राज्य ने 2007 की रिट याचिका सं. 1049 और 2007 की रिट याचिका सं. 1050 में पारित किए गए तारीख 5 सितंबर, 2007 के उस एक ही निर्णय और आदेश के विरुद्ध ये अपीलें फाइल की हैं जिसके द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ की खंड न्यायपीठ ने इस मामले में के अपीलार्थी/उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा फाइल की गई दोनों रिट याचिकाएं खारिज कर दी थीं ।

3. उपर्युक्त दोनों रिट याचिकाएं अपीलार्थी/उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा फाइल की गई हैं जिसका प्रतिनिधित्व न्यायालयिक विज्ञान विभाग और गृह विभाग द्वारा किया गया है और इन रिट याचिकाओं में राज्य लोक सेवा ट्रायब्युनल, लखनऊ (संक्षेप में "ट्रायब्युनल" कहा गया है) के निर्णय और

आदेश को चुनौती दी गई है और ट्रायब्युनल द्वारा पारित किए गए तारीख 10 अप्रैल, 2007 के उस निर्णय और आदेश को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी किए जाने की ईप्सा की गई है जिसके द्वारा ट्रायब्युनल ने उत्तर प्रदेश राज्य को यह निदेश दिया था कि वह सहायक निदेशक के पद पर प्रत्यर्थियों को प्रोन्नत किए जाने के मामले पर विचार करे और उन्हें, यदि उपयुक्त पाया जाए, सभी पारिणामिक फायदे प्रदान करे । उच्चतम न्यायालय ने तारीख 5 सितंबर, 2007 के अपने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से फाइल की गई दोनों रिट याचिकाओं को यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के पश्चात् खारिज कर दिया कि तारीख 15 सितंबर, 1990 के उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा (प्रथम संशोधन) नियम, 1990 जो उत्तर प्रदेश सरकार के तारीख 20 अक्तूबर, 1990 के राजपत्र में प्रकाशित हुआ था, उस तारीख से प्रवृत्त समझा जाएगा जिस तारीख से वह उत्तर प्रदेश सरकार के राजपत्र में सम्यक् रूप से प्रकाशित किया गया था न कि उस तारीख से जब सरकार द्वारा नियम तैयार किए गए थे और पारित किए गए थे । इस निष्कर्ष के परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय तथा ट्रायब्युनल द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी/दावेदार-पदधारी सहायक निदेशक, न्यायालयिक विज्ञान के पद पर प्रोन्नति के लिए दावा करने हेतु विचार किए जाने के लिए सम्यक् रूप से पात्र और अर्हित हैं क्योंकि वे उस समय से प्रोन्नत किए जाने के लिए आवश्यक अनुभव अर्जित कर चुके हैं जब से राजपत्र में नियम प्रकाशित हुए हैं ।

4. विरोधी पक्षकारों के बीच संविवाद विनिश्चित करने के लिए जहां तक इस मामले के सुसंगत तथ्यों का संबंध है, यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 1 को आरंभ में कनिष्ठ रासायनिक सहायक न्यायालयिक प्रयोगशाला के पद पर वर्ष 1968 में नियुक्त किया गया था । तत्पश्चात् कनिष्ठ रासायिनक सहायक के उक्त पद का नामकरण बदलकर वैज्ञानिक सहायक कर दिया गया । प्रत्यर्थी सं. 1 को वरिष्ठ रासायनिक सहायक के पद पर वर्ष 1973 में प्रोन्नत किया गया और उसे तारीख 16 सितंबर, 1985 को विज्ञान अधिकारी के रूप में पुनः प्रोन्नत किया गया और प्रोन्नति के इस आदेश के अनुपालन में उसने उक्त पद तारीख 20 सितंबर, 1985 को ग्रहण किया । उक्त प्रोन्नति आदेश इस शर्त के साथ जारी किया गया कि प्रोन्नति आदेश एक वर्ष की अवधि या सेवा नियमों के प्रकाशित किए जाने तक ही प्रभावी रहेगा । इसके पश्चात् राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा नियम, 1987 (संक्षेप में

"नियम" कहा गया है) प्रकाशित किया । उक्त नियम के नियम 5 के अधीन यह अधिकथित किया गया है कि 75% पद सीधी भर्ती द्वारा और शेष 25% पद 5 वर्ष का अनुभव रखने वाले स्थायी विज्ञान अधिकारियों में से प्रोन्नति द्वारा भरे जाएंगे । इसके अतिरिक्त, उक्त नियम 5 के परंतुक के अधीन यह अभिकथित किया गया है कि यदि स्थायी विज्ञान अधिकारी उपलब्ध नहीं है, तब अस्थायी और स्थानापन्न कार्मिकों को उक्त पद पर प्रोन्नत करने के लिए यह विचार किया जा सकता है कि वे निकटतम निचले पद पर स्थायी हैं । विभाग में सहायक निदेशक के 15 पद हैं जो राज्य द्वारा उस समय मंजूर किए गए थे जब नियम, 1987 प्रवृत्त हुए थे । तत्पश्चात् नियम, 1987 में उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा (प्रथम संशोधन) नियम, 1990 द्वारा संशोधन किया गया जिसे उत्तर प्रदेश सरकार के तारीख 20 अक्तूबर, 1990 के राजपत्र में प्रकाशित किया गया । इसी दौरान, प्रत्यर्थियों ने पहले ही पांच वर्ष का अनुभव निकटतम निचले पद पर अर्जित कर लिया था जिस कारण वे सहायक निदेशक न्यायालयिक विज्ञान के पद पर प्रोन्नति के लिए पात्र हो गए ।

5. किंतु नियम, 1990 के अनुसरण में राज्य सरकार ने तारीख 5 जनवरी, 1995 के रोजगार समाचारपत्र में प्रकाशित अधिसूचना के माध्यम से सीधी भर्ती के लिए 11 रिक्तियां अधिसूचित कीं । चूंकि पांच वर्ष की सेवा पूर्ण करने के पश्चात् भी, सहायक निदेशक के पद पर प्रत्यर्थियों को उन 4 रिक्तियों के प्रति प्रोन्नति प्रदान नहीं की गई थी जो प्रोन्नति कोटे के अंतर्गत भरी जाने के लिए उपलब्ध थीं, इसलिए प्रत्यर्थियों ने उत्तर प्रदेश लोक सेवा ट्रायब्युनल अधिनियम, 1976 के अधीन दावा याचिका फाइल की ।

ट्रायब्युनल ने दावा याचिका मंजूर की और प्राधिकारियों को यह निदेश दिया कि वे सहायक निदेशक के पद पर उक्त कोटे के प्रति प्रोन्नति किए जाने के लिए प्रत्यर्थियों के मामले पर विचार करें और उन्हें यदि उपयुक्त हो, वेतन और भत्तों सहित सभी पारिणामिक फायदों के साथ प्रोन्नत करें ।

6. न्यायालयिक विज्ञान विभाग, उत्तर प्रदेश ने ट्रायब्युनल के आदेश से व्यथित होकर दो रिट याचिकाएं फाइल कीं जिन्हें उच्च न्यायालय के तारीख 5 सितंबर, 2007 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा यह निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए खारिज कर दिया गया कि तारीख 15 सितंबर, 1990 का उत्तर प्रदेश न्यायालयिक प्रयोगशाला तकनीकी अधिकारी सेवा (प्रथम संशोधन) नियम, 1990 उत्तर प्रदेश सरकार के तारीख 20 अक्तूबर,

1990 के राजपत्र में प्रकाशित किया गया है और इन नियमों को उस तारीख से प्रवृत्त समझा जाएगा जब उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार के राजपत्र में सम्यक् रूप से प्रकाशित किया गया था न कि उस तारीख से जब राज्य सरकार द्वारा नियम तैयार किए गए थे जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी प्रोन्नति किए जाने के पात्र हैं क्योंकि उनके पास आवश्यक अनुभव है ।

7. अपीलार्थी/उत्तर प्रदेश राज्य उच्च न्यायालय तथा ट्रायब्युनल द्वारा पारित किए गए निर्णयों और आदेशों से व्यथित हुआ और उसने ये दो विशेष इजाजत याचिकाएं फाइल की हैं जो उच्च न्यायालय के उस एक ही निर्णय और आदेश से उद्भूत हैं जिसे चुनौती दी गई है और जिसमें चुनौती का मुख्य आधार यह है कि प्रत्यर्थी नियम, 1987 के नियम 5 और नियम 16 के अधीन सहायक निदेशक के पद पर इस कारण प्रोन्नत किए जाने के पात्र नहीं है कि उनके पास न तो पांच वर्ष का अनुभव है और न ही वे विज्ञान अधिकारी के स्थायी पद पर कार्य कर रहे हैं । इस प्रकार, वे नियम, 1987 के नियम 5 और नियम 16 के निबंधनों में पात्र नहीं हैं जिनके अंतर्गत पांच वर्ष का अनुभव रखने वाले स्थायी विज्ञान अधिकारियों में से सहायक निदेशक के पद पर 25% रिक्तियां भरे जाने का उपबंध किया गया है । यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थियों को तारीख 16 सितंबर, 1985 को पूर्णतया तदर्थ आधार पर प्रोन्नत किया गया था और इसके पश्चात् उन्हें तारीख 20 मार्च, 1989 को उक्त पद पर स्थायी रूप से प्रोन्नत कर दिया गया किंतु नियम, 1987 में तारीख 15 सितंबर, 1990 को संशोधन किया गया था जिसके द्वारा सहायक निदेशक के सभी पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने थे । इन परिस्थितियों में, यह दलील दी गई है कि यह नहीं माना जा सकता था कि प्रत्यर्थियों ने नियम, 1987 के नियम 5 द्वारा यथापेक्षित विज्ञान अधिकारी के सहायक पद का लाभ पाने के लिए पांच वर्ष का अनुभव प्राप्त कर लिया था ताकि सहायक निदेशक के पद पर प्रोन्नति पाने हेतु विचार किए जाने के पात्र हो सकें ।

8. कारण बताओ नोटिस के जवाब में, जो इस न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थियों को जारी किया गया था, संक्षेप में यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी प्रोन्नत किए जाने के लिए सम्यक् रूप से अर्हित हैं क्योंकि वे पहले ही सेवा में विज्ञान अधिकारी के निकटतम निचले पद पर पांच वर्ष पूरे कर चुके हैं, इसलिए उन्हें सहायक निदेशक के पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए ठीक ही पात्र अभिनिर्धारित किया गया है । इस संबंध में भी दलीलें दी गई हैं कि प्रत्यर्थियों ने नियम, 1987 के नियम 5 के निबंधनों में पांच वर्ष

की सेवा पहले ही पूरी कर ली है और यही नियम, 1987 प्रत्यर्थियों के मामले को लागू होता है । यह भी दलील दी गई है कि नियम, 1987 के नियम 5 को दृष्टिगत करते हुए, प्रत्यर्थी सहायक निदेशक के पद पर विभागीय अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित 25% रिक्तियों के प्रति प्रोन्नत किए जाने के लिए हकदार हैं जो उन अभ्यर्थियों द्वारा भरी जानी थीं जो विभाग में पहले से ही सेवा कार्य कर रहे हैं क्योंकि वर्ष 1990 का संशोधन, जिसके अधीन यह अधिकथित किया गया है कि सहायक निदेशकों के पद सीधी भीर्ती द्वारा भरे जाएंगे, तारीख 20 अक्तूबर, 1990 को प्रवृत्त हुआ और उस समय तक विज्ञान अधिकारी के पद पर प्रत्यर्थी की प्रोन्नति की पुष्टि हो चुकी थी ताकि असंशोधित नियम, 1987 के अधीन सहायक निदेशक के पद पर प्रोन्नति किए जाने के लिए पात्र हो सके और इस प्रकार वह संशोधन नियम, 1990 द्वारा प्रभावित न हो सके जिनके अधीन सीधी भर्ती द्वारा पदों का भरना अधिकथित किया गया है ।

9. उच्च न्यायालय तथा ट्रायब्युनल द्वारा पारित किए गए आदेशों की शुद्धता को सुनिश्चित करने के लिए, हमने पक्षकारों के विरोधी दावों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । हमने इस प्रक्रिया में यह देखा है कि प्रत्यर्थियों को वर्ष 1973 में सर्वप्रथम वरिष्ठ रासायनिक सहायक के पद पर आरंभ में प्रोन्नत किया गया था और इसके पश्चात् उन्हें तारीख 16 सितंबर, 1985 को विज्ञान अधिकारी के रूप में प्रोन्नत किया गया और उन्होंने इस पद को तारीख 20 सितंबर, 1985 को ग्रहण किया । निःसंदेह, यह सत्य है कि इस प्रोन्नति आदेश से यह उपदर्शित होता है कि प्रोन्नति केवल एक वर्ष के लिए ही प्रभावी थी या नियम, 1987 के प्रकाशित होने तक किंतु इसके पश्चात् जब नियम, 1987 अंतिमतः प्रकाशित किए गए, उनके अधीन यह उपबंध किया गया कि प्रोन्नति के कुल पदों में से 25% पद ऐसे स्थायी विज्ञान अधिकारियों में से भरे जाएंगे जिन्हें सेवा में पांच वर्ष का अनुभव होगा । इस प्रकार यदि पांच वर्ष की सेवा को आरंभिक प्रोन्नति की तारीख से संशोधन नियम, 1990 के प्रकाशित होने तक गणना में लिया जाए, तब यह माना जाएगा कि प्रत्यर्थियों ने विज्ञान अधिकारी के पद पर सेवा में पांच वर्ष पूरे कर लिए हैं जिससे वे 25% प्रोन्नति कोटा के अंतर्गत ऐसे विभागीय अभ्यर्थियों में से रिक्तियां भरे जाने के पात्र होंगे जिनका अपेक्षित अनुभव पांच वर्ष होगा । तथापि, अपीलार्थी/उत्तर प्रदेश राज्य ने इस बात का पूर्णतया विरोध किया कि प्रत्यर्थियों का अनुभव उस तारीख से गणना में नहीं लिया जाएगा जब से राजपत्र में नियम प्रकाशित हुए हैं बल्कि उस तारीख से गणना में लिया जाएगा जब से नियम बनाने की तैयारी आरंभ की गई थी,

इस बात को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थियों के पास विज्ञान अधिकारी के पद पर कार्य करने का पांच वर्ष का अनुभव नहीं है ।

10. तथापि, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि यह दलील पूर्णतया खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि नियमों को उनके तैयार किए जाने की तारीख से प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है किंतु वे विधिक रूप से समर्थ माने जाएंगे और इस प्रकार वे प्रवर्तनीय तब होंगे जब नियमों को प्रभावी बनाया जाए और जिस तारीख को वे नियम प्रभावी बनाए जाएंगे, निःसंदेह वह तारीख राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियम प्रकाशित किए जाने की तारीख मानी जाएगी । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, हमें प्रत्यर्थियों के इस अभिवाक् में कोई कमी दिखाई नहीं देती है कि उनके पास विज्ञान अधिकारी के पद पर कार्य करने का पांच वर्ष का अपेक्षित अनुभव है क्योंकि उन्होंने संशोधित नियम, 1990 के प्रकाशित किए जाने से पांच वर्ष की सेवा की अवधि पहले ही पूरी कर ली है, अतः उन्हें सहायक निदेशक के अगले पद पर प्रोन्नत किए जाने के मामले पर विचार करने हेतु ठीक ही पात्र अभिनिर्धारित किया गया है । इस प्रकार हम इस आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत का अनुमोदन करते हैं और उसे कायम रखते हैं ।

11. यदि हमें यह अभिनिर्धारित करना होता कि आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा समनुदेशित कारण विपथन से ग्रसित हैं क्योंकि प्रत्यर्थियों ने वर्ष 1989 में विज्ञान अधिकारी का पद ग्रहण किया था जिसके कारण वर्ष 1990 में उनके पास अपेक्षित अनुभव नहीं था, तब भी इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि प्रत्यर्थियों को तारीख 16 सितंबर, 1985 को विज्ञान अधिकारी के पद पर तदर्थ रूप में प्रोन्नत किया गया है और यह नियुक्ति केवल एक वर्ष के लिए ही प्रभावी होगी किंतु उच्च न्यायालय ने यह भी आदेश किया है कि सेवा नियम, 1987 के प्रकाशित किए जाने तक पदधारी प्रोन्नत पद पर बने रहने के हकदार हैं । इस प्रकार प्रत्यर्थियों को प्रोन्नत पदों पर बने रहने का अधिकार है क्योंकि नियम, 1987 अंतिम रूप से प्रकाशित हो गए थे और वे 1987 में प्रभावी हो गए थे जिससे यह स्पष्ट होता है कि कुल पदों के 25% पद ऐसे स्थायी विज्ञान अधिकारियों में से भरे जाने थे जिन्हें पांच वर्ष की सेवा का अनुभव था और एक परंतुक भी जोड़ा गया जो इस प्रकार अधिकथित है :–

> "यदि स्थायी विज्ञान अधिकारी उपलब्ध नहीं हैं, तब ऐसे अस्थायी और स्थानापन्न कार्मिकों के मामले पर उक्त पदों पर प्रोन्नत

> किए जाने हेतु यह विचार किया जा सकता है कि वे निचले निकटतम पद पर स्थायी हैं ।"

इसके पश्चात् नियम, 1987 वर्ष 1990 में संशोधित किए गए और उन्हें तारीख 20 अक्तूबर, 1990 के उत्तर प्रदेश सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया और यह अधिकथित किया गया कि पश्चात्वर्ती प्रोन्नति केवल सीधी भर्ती द्वारा ही की जा सकती है । किंतु यह अनुज्ञात नहीं किया गया कि इस संशोधन से प्रोन्नति के लिए किया गया प्रत्यर्थियों का दावा प्रभावित हो, और इससे ऐसे कर्मचारी के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े जो संशोधन नियम, 1990 की अधिनियमिति और प्रवर्तन के पूर्व पात्रता के पद पर हो । चूंकि प्रत्यर्थी नियम, 1987 के निबंधनों में विज्ञान अधिकारी के पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए पात्र और हकदार थे, इसलिए उनके उस पद के अनुभव को अनदेखा नहीं किया जा सकता था ताकि उन्हें नियम, 1990 के आधार पर सहायक निदेशक के पश्चात्वर्ती पद पर प्रोन्नत किए जाने के फायदे से इनकार किया जा सके और यह नियम उन रिक्तियों को भरे जाने के लिए लागू होगा जो वर्ष 1990 के पश्चात् सृजित हुई थीं ।

12. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस स्थिति के समर्थन में **निर्मल चंद्र भट्टाचार्यजी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया है :–

> "ऐसे किसी भी नियम और आदेश, जो कर्मचारियों के फायदे के लिए बनाए गए हैं, का अर्थ सामान्यतया इस प्रकार नहीं लगाया जाएगा कि स्वतः प्रयोग किए जाने से उससे कठिनाई हो और अन्याय हो और यदि कोई भी अन्याय होता है तब न्यायालयों का प्राथमिक कर्तव्य यह होगा कि वे इस प्रकार समाधान न करें कि एक व्यक्ति को हानि हो और दूसरे को लाभ ।"

न्यायालय ने यह भी व्यक्त किया है कि विभाग द्वारा की गई भूल या विलंब से अपीलार्थी प्रभावित नहीं होने चाहिए, इसके अतिरिक्त उक्त मामले में पुनर्गठन आदेश के अधीन ही यह उपबंध किया गया है कि तारीख 31 जुलाई, 1983 को विद्यमान रिक्तियां उस प्रक्रिया के अनुसार भरी जानी चाहिए जो तारीख 1 अगस्त, 1983 के पूर्व प्रचलन में थी । अतः इस न्यायालय ने कर्मचारियों के प्रोन्नति आदेश को बहाल किया

---

[1] (1991) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 363.

जिसके लिए वे सेवा नियमों में परिवर्तन किए जाने के पूर्व हकदार थे क्योंकि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सेवा नियम में इस प्रकार परिवर्तन नहीं किया जा सकता है कि किसी ऐसे कर्मचारी पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़े जो नियम में परिवर्तन किए जाने के पूर्व सेवा में था । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि प्रोन्नति में नियोजक के कहने पर विलंब किया जाता है तब उस कर्मचारी को अंतर्वर्ती घटनाओं से पीड़ित नहीं किया जा सकता है ।

13. उपर्युक्त मामले में अधिकथित सिद्धांत इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ठीक प्रकार लागू होते हैं क्योंकि 1990 के पश्चात्‌वर्ती संशोधन के अधीन यह अधिकथित किया गया है कि सहायक निदेशक न्यायालयिक विज्ञान के सभी पद सीधी भर्ती द्वारा भरने के लिए उन प्रत्यर्थियों के मामलों में लागू नहीं किए जा सकते थे जो पहले से विज्ञान अधिकारी के पद पर कार्य कर रहे थे और इस प्रकार वे नियम, 1987 के निबंधनों में विज्ञान अधिकारी के रूप में पांच वर्ष की सेवा पूरी करने के पश्चात्‌ सहायक निदेशक के 25% पद के प्रोन्नत कोटे के लिए पात्र थे, अतः इस पद पर उनका पांच वर्ष का अनुभव इस आधार पर व्यर्थ नहीं हो सकता था कि यह संशोधन वर्ष 1990 में किया गया था ताकि सहायक निदेशक के सभी पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाएं । इस मत के समर्थन में, प्रत्यर्थियों के काउंसेल ने **बी. एल. गुप्ता और एक अन्य** बनाम **दिल्ली नगर निगम**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का भी अवलंब लिया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि कोई भी ऐसी रिक्ति जो वर्ष 1995 के पश्चात्‌ सृजित हुई है, वह नियम, 1987 के अनुसार भरी जानी थी किंतु ऐसी रिक्तियां जो 1995 के पूर्व सृजित हुई थीं वे नियम, 1978 के अनुसार भरी जानी थीं ।

14. उपर्युक्त विश्लेषण के परिणामस्वरूप, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय ने यह मत ठीक ही व्यक्त किया है कि प्रत्यर्थी नियम, 1987 के अधीन प्रोन्नति द्वारा भरे जाने वाले 25% कोटे के प्रति सहायक निदेशक के पद पर प्रोन्नत किए जाने के पात्र हैं क्योंकि यदि उत्तर प्रदेश सरकार के राजपत्र में नियमों के प्रकाशित किए जाने की तारीख से गणना की जाए तो वे विज्ञान अधिकारी के पद पर बने रहने के पांच वर्ष के अपेक्षित अनुभव की शर्त पूरी करते हैं ।

15. किंतु उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, यह अनदेखा नहीं किया जा

---

[1] (1998) 9 एस. सी. सी. 223.

सकता है कि यदि यह मान लिया जाए कि प्रत्यर्थियों ने विज्ञान अधिकारी के पद पर किसी भी कारण से पांच वर्ष का अनुभव पूरा नहीं किया है और वे इस कारण आगे प्रोन्नति किए जाने के लिए अपात्र हो जाते हैं, तब भी उन्हें यह कानूनी संरक्षा और उक्त नियम के परंतुक के फायदे प्राप्त हैं जिनके अंतर्गत यह अधिकथित किया गया है कि यदि स्थायी विज्ञान अधिकारी 25% कोटे के अधीन उपलब्ध नहीं है तब ऐसे अस्थायी और स्थानापन्न कार्मिकों को उक्त पदों के लिए प्रोन्नत किए जाने पर विचार किया जाना चाहिए जो निकटतम निचले पद पर स्थायी रूप से कार्य कर रहे हैं । यह सुस्थापित है कि प्रत्यर्थियों के पद की निकटतम निचले पद पर पहले ही पुष्टि की जा चुकी है जब उन्हें विज्ञान अधिकारी के पद पर प्रोन्नत किया गया था और चूंकि वे परंतुक के फायदे के लिए हकदार हैं जिसके अधीन यह अधिकथित किया गया है कि अस्थायी विज्ञान अधिकारी जो निकटतम निचले पद पर स्थायी रूप से कार्य कर रहे हैं उनके मामले पर प्रोन्नत किए जाने के लिए विचार किया जा सकता है, प्रत्यर्थियों को यह अधिकार है कि उन्हें प्रोन्नत किए जाने के लिए विचार किया जाना चाहिए क्योंकि वे विज्ञान अधिकारी के पद पर बने हुए हैं और उन्होंने तारीख 20 अक्तूबर, 1990 को प्रवृत्त होने वाले संशोधित नियम के पूर्व पांच वर्ष का अनुभव पूरा कर लिया है और इस संशोधित नियम के अधीन यह अधिकथित किया गया है कि सहायक निदेशक के सभी पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाएंगे । इस प्रकार, इस अतिरिक्त और ठोस कारण तथा उच्च न्यायालय द्वारा समनुदेशित कारणों के आधार पर हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय तथा ट्रायब्युनल के आदेशों में कोई कमी नहीं है और इन न्यायालयों ने प्रत्यर्थियों के पक्ष में यह अभिनिर्धारित करते हुए निदेश दिया है कि अपीलार्थी/उत्तर प्रदेश राज्य सहायक निदेशक न्यायालयिक विज्ञान के पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए उनकी पात्रता पर विचार करे और उन्हें, यदि वे पात्र पाए जाएं, पारिणामिक फायदे प्रदान करें ।

16. इस प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी/उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा फाइल की गई इन अपीलों में कोई सार नहीं है और परिणामतः हम इन्हें खारिज करते हैं कितु खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./अनू.

<u>गतांक से आगे......</u>

अध्याय 4

राज्य सूचना आयोग

15. **राज्य सूचना आयोग का गठन** – (1) प्रत्येक राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा .... (राज्य का नाम) सूचना आयोग के नाम से ज्ञात एक निकाय का गठन करेगी, जो ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का पालन करेगा, जो उसे इस अधिनियम के अधीन सौंपे जाएं ।

(2) राज्य सूचना आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा –

(क) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त ; और

(ख) दस से अनधिक उतनी संख्या में राज्य सूचना आयुक्त, जितने आवश्यक समझे जाएं ।

(3) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्तों की नियुक्ति, राज्यपाल द्वारा निम्नलिखित से मिलकर बनी किसी समिति की सिफारिश पर की जाएगी, –

(i) मुख्यमंत्री, जो समिति का अध्यक्ष होगा ;

(ii) विधान सभा में विपक्ष का नेता ; और

(iii) मुख्यमंत्री द्वारा नामनिर्देशित किया जाने वाला मंत्रिमंडल का सदस्य ।

स्पष्टीकरण – शंकाओं को दूर करने के प्रयोजनों के लिए यह घोषित किया जाता है कि जहां विधान सभा में विपक्षी दल के नेता को उस रूप में मान्यता नहीं दी गई है, वहां विधान सभा में सरकार के विपक्षी एकल सबसे बड़े समूह के नेता को विपक्षी दल का नेता समझा जाएगा ।

(4) राज्य सूचना आयोग के कार्यों का साधारण अधीक्षण, निदेशन और प्रबंध राज्य मुख्य सूचना आयुक्त में निहित होगा, जिसकी राज्य सूचना आयुक्तों द्वारा सहायता की जाएगी और वह सभी ऐसी शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा और सभी ऐसे कार्य और बातें कर सकेगा जो राज्य सूचना आयोग द्वारा इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य प्राधिकारी के निर्देशों के अध्यधीन रहे बिना स्वतंत्र रूप से प्रयोग की जा सकती हैं या की जा सकती हैं ।

(5) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्त विधि, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, समाजसेवा, प्रबंध, पत्रकारिता, जनसंपर्क माध्यम या प्रशासन और शासन में व्यापक ज्ञान और अनुभव वाले समाज में प्रख्यात व्यक्ति होंगे ।

(6) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त, यथास्थिति, संसद् का सदस्य या किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के विधान-मंडल का सदस्य नहीं होगा या कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा या किसी राजनैतिक दल से संबद्ध नहीं होगा या कोई कारबार नहीं करेगा या कोई वृत्ति नहीं करेगा ।

(7) राज्य सूचना आयोग का मुख्यालय राज्य में ऐसे स्थान पर होगा, जिसे राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे और राज्य सूचना आयोग, राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, राज्य में अन्य स्थानों पर अपने कार्यालय स्थापित कर सकेगा ।

16. **पदावधि और सेवा की शर्तें** – (1) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त उस तारीख से, जिसको वह अपना पद ग्रहण करता है, पांच वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा और पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परंतु कोई राज्य मुख्य सूचना आयुक्त पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् उस रूप में पद धारण नहीं करेगा ।

(2) प्रत्येक राज्य सूचना आयुक्त उस तारीख से, जिसको वह अपना पद ग्रहण करता है, पांच वर्ष की अवधि के लिए या पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, पद धारण करेगा और राज्य सूचना आयुक्त के रूप में पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परंतु प्रत्येक राज्य सूचना आयुक्त, इस उपधारा के अधीन अपना पद रिक्त करने पर, धारा 15 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट रीति से राज्य मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होगा :

परंतु यह और कि जहां राज्य़ सूचना आयुक्त की राज्य मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में नियुक्ति की जाती है, वहां उसकी पदावधि राज्य सूचना आयुक्त और राज्य मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में कुल मिलाकर पांच वर्ष से अधिक नहीं होगी ।

(3) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या कोई राज्य सूचना आयुक्त अपना

पद ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किए गए किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष पहली अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए उपवर्णित प्ररूप के अनुसार शपथ या प्रतिज्ञान लेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा ।

(4) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या कोई राज्य सूचना आयुक्त, किसी भी समय, राज्यपाल को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपने पद का त्याग कर सकेगा :

परंतु राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या किसी राज्य सूचना आयुक्त को धारा 17 में विनिर्दिष्ट रीति से हटाया जा सकेगा ।

(5) संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें –

(क) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त की वही होंगी, जो किसी निर्वाचन आयुक्त की हैं ;

(ख) राज्य सूचना आयुक्त की वही होंगी, जो राज्य सरकार के मुख्य सचिव की हैं :

परन्तु यदि राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या कोई राज्य सूचना आयुक्त अपनी नियुक्ति के समय भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी पूर्व सेवा के संबंध में कोई पेंशन, अक्षमता या क्षति पेंशन से भिन्न, प्राप्त कर रहा है तो राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त के रूप में सेवा के संबंध में उसके वेतन में से उस पेंशन की रकम को, जिसके अंतर्गत पेंशन का ऐसा भाग जिसे संराशिकृत किया गया था और सेवानिवृत्ति उपदान के समतुल्य पेंशन को छोड़ कर अन्य प्रकार के सेवानिवृत्ति फायदों के समतुल्य पेंशन भी है, कम कर दिया जाएगा :

परन्तु यह और कि जहां राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त, अपनी नियुक्ति के समय, किसी केन्द्रीय अधिनियम या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी निगम या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी सरकारी कंपनी में की गई किसी पूर्व सेवा के संबंध में सेवानिवृत्ति फायदे प्राप्त कर रहा है वहां राज्य मुख्य सूचना आयुक्त राज्य सूचना आयुक्त के रूप में सेवा के संबंध में उसके वेतन में से सेवानिवृत्ति फायदों के समतुल्य पेंशन की रकम कम कर दी जाएगी :

परन्तु यह और कि राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्तों के वेतन, भत्तों और सेवा की अन्य शर्तों में उनकी नियुक्ति के पश्चात् उनके लिए अलाभकारी रूप में परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

(6) राज्य सरकार, राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्तों को उतने अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जितने इस अधिनियम के अधीन उनके कृत्यों के दक्ष पालन के लिए आवश्यक हों और इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए नियुक्त किए गए अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा के निबंधन और शर्तें ऐसी होंगी, जो विहित की जाएं ।

17. **राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त का हटाया जाना** – (1) उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या किसी राज्य सूचना आयुक्त को राज्यपाल के आदेश द्वारा साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर उसके पद से तभी हटाया जाएगा, जब उच्चतम न्यायालय ने, राज्यपाल द्वारा उसे किए गए किसी निर्देश पर जांच के पश्चात् यह रिपोर्ट दी हो कि, यथास्थिति, राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त को उस आधार पर हटा दिया जाना चाहिए ।

(2) राज्यपाल, उस राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त को, जिसके विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन उच्चतम न्यायालय को निर्देश किया गया है, ऐसे निर्देश पर उच्चतम न्यायालय की रिपोर्ट की प्राप्ति पर राज्यपाल द्वारा आदेश पारित किए जाने तक, पद से निलंबित कर सकेगा और यदि आवश्यक समझे तो ऐसी जांच के दौरान कार्यालय में उपस्थित होने से प्रतिषिद्ध भी कर सकेगा ।

(3) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी राज्यपाल, राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या किसी राज्य सूचना आयुक्त को, आदेश द्वारा, पद से हटा सकेगा, यदि, यथास्थिति, राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त –

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया है ; या

(ख) वह ऐसे किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध ठहराया गया है जिसमें राज्यपाल की राय में नैतिक अधमता अंतर्वलित है ; या

(ग) वह अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों से परे किसी वैतनिक नियोजन में लगा हुआ है ; या

(घ) राज्यपाल की राय में, मानसिक या शारीरिक अक्षमता के कारण पद पर बने रहने के अयोग्य है ; या

(ङ) उसने ऐसे वित्तीय या अन्य हित अर्जित किए हैं, जिनसे, राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ।

(4) यदि राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या कोई राज्य सूचना आयुक्त, किसी प्रकार, राज्य सरकार द्वारा या उसकी ओर से की गई किसी संविदा या करार से संबद्ध या उसमें हितबद्ध है या किसी निगमित कंपनी के किसी सदस्य को किसी रूप में से अन्यथा और उसके अन्य सदस्यों के साथ सामान्यतः उसके लाभ में या उससे प्रोद्भूत होने वाले किसी फायदे या परिलब्धियों में हिस्सा लेता है तो वह उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए कदाचार का दोषी समझा जाएगा ।

अध्याय 5
सूचना आयोगों की शक्तियां और कृत्य, अपील तथा शास्तियां

18. **सूचना आयोगों की शक्तियां और कृत्य** – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह निम्नलिखित किसी ऐसे व्यक्ति से शिकायत प्राप्त करे और उसकी जांच करे –

(क) जो, यथास्थिति, किसी केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी को, इस कारण से अनुरोध प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा है कि इस अधिनियम के अधीन ऐसे अधिकारी की नियुक्ति नहीं की गई है या, यथास्थिति, केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी या राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी ने इस अधिनियम के अधीन सूचना या अपील के लिए धारा 19 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी अथवा ज्येष्ठ अधिकारी या, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को उसके आवेदन को भेजने के लिए स्वीकार करने से इनकार कर दिया है ;

(ख) जिसे इस अधिनियम के अधीन अनुरोध की गई कोई जानकारी तक पहुंच के लिए इंकार कर दिया गया है ;

(ग) जिसे इस अधिनियम के अधीन विनिर्दिष्ट समय-सीमा के भीतर सूचना के लिए या सूचना तक पहुंच के लिए अनुरोध का उत्तर नहीं दिया गया है ;

(घ) जिससे ऐसी फीस की रकम का संदाय करने की अपेक्षा की गई है, जो वह अनुचित समझता है ;

(ङ) जो यह विश्वास करता है कि उसे इस अधिनियम के अधीन अपूर्ण, भ्रम में डालने वाली या मिथ्या सूचना दी गई है ; और

(च) इस अधिनियम के अधीन अभिलेखों के लिए अनुरोध करने या उन तक पहुंच प्राप्त करने से संबंधित किसी अन्य विषय के संबंध में ।

(2) जहां, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग का यह समाधान हो जाता है कि उस विषय में जांच करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं, वहां वह उसके संबंध में जांच आरंभ कर सकेगा ।

(3) यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को, इस धारा के अधीन किसी मामले में जांच करते समय वही शक्तियां प्राप्त होंगी, जो निम्नलिखित मामलों के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी बात का विचारण करते समय सिविल न्यायालय में निहित होती हैं, अर्थात् :–

(क) किन्हीं व्यक्तियों को समन करना और उन्हें उपस्थित कराना तथा शपथ पर मौखिक या लिखित साक्ष्य देने के लिए और दस्तावेज या चीजें पेश करने के लिए उनको विवश करना ;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और निरीक्षण की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्र पर साक्ष्य को अभिग्रहण करना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतियां मंगाना ;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए समन जारी करना ; और

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए ।

(4) यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के किसी अन्य अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी असंगत बात के होते हुए भी, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग इस अधिनियम के अधीन किसी शिकायत की जांच करने के दौरान, ऐसे किसी अभिलेख की परीक्षा कर सकेगा, जिसे यह अधिनियम लागू होता है और जो लोक प्राधिकारी के नियंत्रण में है और उसके द्वारा ऐसे किसी अभिलेख को किन्हीं भी आधारों पर रोका नहीं जाएगा ।

19. **अपील** – (1) ऐसा कोई व्यक्ति, जिसे धारा 7 की उपधारा (1) या उपधारा (3) के खंड (क) में विनिर्दिष्ट समय के भीतर कोई विनिश्चय प्राप्त नहीं हुआ है या जो, यथास्थिति केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी के किसी विनिश्चय से व्यथित है, उस अवधि की समाप्ति से या ऐसे किसी विनिश्चय की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर ऐसे अधिकारी को अपील कर सकेगा, जो प्रत्येक लोक प्राधिकरण में, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या लोक सूचना अधिकारी की पंक्ति से ज्येष्ठ पंक्ति का है :

परन्तु ऐसा अधिकारी, तीस दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील को ग्रहण कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी समय पर अपील फाइल करने में पर्याप्त कारण से निवारित किया गया था ।

(2) जहां अपील धारा 11 के अधीन, यथास्थिति, किसी केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या किसी राज्य लोक सूचना अधिकारी द्वारा पर व्यक्ति की सूचना प्रकट करने के लिए किए गए किसी आदेश के विरुद्ध की जाती है वहां संबंधित पर व्यक्ति द्वारा अपील, उस आदेश की तारीख से 30 दिन के भीतर की जाएगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन विनिश्चय के विरुद्ध दूसरी अपील उस तारीख से जिसको विनिश्चय किया जाना चाहिए था या वास्तव में प्राप्त किया गया था, नब्बे दिन के भीतर केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को होगी :

परन्तु, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग नब्बे दिन की अवधि की समाप्ति पश्चात् अपील को ग्रहण कर सकेगा, यदि

उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी समय पर अपील फाइल करने से पर्याप्त कारण से निवारित किया गया था ।

(4) यदि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी का विनिश्चय जिसके विरुद्ध अपील की गई है, पर व्यक्ति की सूचना से संबंधित है तो यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग उस पर व्यक्ति को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देगा ।

(5) अपील संबंधी किन्हीं कार्यवाहियों में यह साबित करने का भार कि अनुरोध को अस्वीकार करना न्यायोचित था, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी पर, जिसने अनुरोध से इनकार किया था, होगा ।

(6) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किसी अपील का निपटारा, लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से, अपील की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर, जो उसके फाइल किए जाने की तारीख से कुल पैंतालीस दिन से अधिक न हो, किया जाएगा ।

(7) यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग का विनिश्चय आबद्धकर होगा ।

(8) अपने विनिश्चय में, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को निम्नलिखित की शक्ति हैं –

(क) लोक प्राधिकरण से ऐसे उपाय करने की अपेक्षा करना, जो इस अधिनियम के उपबंधों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो, जिनके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं –

(i) सूचना तक पहुंच उपलब्ध कराना, यदि विशिष्ट प्ररूप में ऐसा अनुरोध किया गया है ;

(ii) यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी को नियुक्त करना ;

(iii) कतिपय सूचना या सूचना के प्रवर्गों को प्रकाशित करना ;

(iv) अभिलेखों के अनुरक्षण, प्रबंध और विनाश से संबंधित अपनी पद्धतियों में आवश्यक परिवर्तन करना ;

(v) अपने अधिकारियों के लिए सूचना के अधिकार के संबंध में प्रशिक्षण के उपबंध को बढ़ाना ;

(vi) धारा 4 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अनुसरण में अपनी एक वार्षिक रिपोर्ट उपलब्ध कराना ;

(ख) लोक प्राधिकारी से शिकायतकर्ता को, उसके द्वारा सहन की गई किसी हानि या अन्य नुकसान के लिए प्रतिपूरित करने की अपेक्षा करना ;

(ग) इस अधिनियम के अधीन उपबंधित शास्तियों में से कोई शास्ति अधिरोपित करना ;

(घ) आवेदन को नामंजूर करना ।

(9) यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग शिकायतकर्ता और लोक प्राधिकारी को, अपने विनिश्चय की, जिसके अंतर्गत अपील का कोई अधिकार भी है, सूचना देगा ।

(10) यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, अपील का विनिश्चय ऐसी प्रक्रिया के अनुसार करेगा, जो विहित की जाए ।

20. **शास्ति** – (1) जहां किसी शिकायत या अपील का विनिश्चय करते समय, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग की यह राय है कि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी ने, किसी युक्तियुक्त कारण के बिना सूचना के लिए, कोई आवेदन प्राप्त करने से इनकार किया है या धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट समय के भीतर सूचना नहीं दी है या असद्भावपूर्वक सूचना के लिए अनुरोध से इंकार किया है या जानबूझकर गलत, अपूर्ण या भ्रामक सूचना दी है या उस सूचना को नष्ट कर दिया है, जो अनुरोध का विषय थी या किसी रीति से सूचना देने में बाधा डाली है, तो वह ऐसे प्रत्येक दिन के लिए, जब तक आवेदन प्राप्त किया जाता है या सूचना दी जाती है, दो सौ पचास रुपए की शास्ति अधिरोपित करेगा, तथापि, ऐसी शास्ति की कुल रकम पचीस हजार रुपए से अधिक नहीं होगी :

परंतु, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी को, उस पर कोई शास्ति अधिरोपित किए जाने के पूर्व,

सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा :

परंतु यह और कि यह साबित करने का भार कि उसने युक्तियुक्त रूप से और तत्परतापूर्वक कार्य किया है, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी पर होगा ।

(2) जहां किसी शिकायत या अपील का विनिश्चय करते समय, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग की यह राय है कि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, किसी युक्तियुक्त कारण के बिना और लगातार सूचना के लिए कोई आवेदन प्राप्त करने में असफल रहा है या उसने धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट समय के भीतर सूचना नहीं दी है या असद्भावपूर्वक सूचना के लिए अनुरोध से इंकार किया है या जानबूझकर गलत, अपूर्ण या भ्रामक सूचना दी है या ऐसी सूचना को नष्ट कर दिया है, जो अनुरोध का विषय थी या किसी रीति से सूचना देने में बाधा डाली है वहां वह यथास्थिति, ऐसी केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी के विरुद्ध उसे लागू सेवा नियमों के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई के लिए सिफारिश करेगा ।

अध्याय 6
प्रकीर्ण

21. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही किसी भी ऐसी बात के बारे में, जो इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई है या की जाने के लिए आशयित है, किसी व्यक्ति के विरुद्ध न होगी ।

22. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होना** – इस अधिनियम के उपबंध, शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (1923 का 19) और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से अन्यथा किसी विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

23. **न्यायालयों की अधिकारिता का वर्जन** – कोई न्यायालय, इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी आदेश के संबंध में कोई वाद, आवेदन

या अन्य कार्यवाही ग्रहण नहीं करेगा और ऐसे किसी आदेश को, इस अधिनियम के अधीन किसी अपील के रूप में के सिवाय किसी रूप में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।

24. **अधिनियम का कतिपय संगठनों को लागू न होना** – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई बात, केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित आसूचना और सुरक्षा संगठनों को, जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट है या ऐसे संगठनों द्वारा उस सरकार को दी गई किसी सूचना को लागू नहीं होगी :

परंतु भ्रष्टाचार और मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी :

परन्तु यह और कि यदि मांगी गई सूचना मानवाधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित है तो सूचना केन्द्रीय सूचना आयोग के अनुमोदन के पश्चात् ही दी जाएगी और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी सूचना अनुरोध की प्राप्ति के पैंतालीस दिन के भीतर दी जाएगी ।

(2) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में किसी अधिसूचना द्वारा, अनुसूची का उस सरकार द्वारा स्थापित किसी अन्य आसूचना या सुरक्षा संगठन को उसमें सम्मिलित करके या उसमें पहले से विनिर्दिष्ट किसी संगठन का उससे लोप करके, संशोधन कर सकेगी और ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन पर ऐसे संगठन को अनुसूची में, यथास्थिति, सम्मिलित किया गया या उसका उससे लोप किया गया, समझा जाएगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

(4) इस अधिनियम की कोई बात ऐसे आसूचना और सुरक्षा संगठनों को लागू नहीं होगी, जो राज्य सरकार द्वारा स्थापित ऐसे संगठन हैं, जिन्हें वह सरकार समय-समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे :

परन्तु भ्रष्टाचार और मानव अधिकारों के अतिक्रमण के अभिकथनों से संबंधित सूचना इस उपधारा के अधीन अपवर्जित नहीं की जाएगी :

परन्तु यह और कि यदि मांगी गई सूचना मानव अधिकारों के अतिक्रमण अभिकथनों से संबंधित है तो सूचना राज्य सूचना आयोग के अनुमोदन के पश्चात् ही दी जाएगी और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी सूचना अनुरोध की प्राप्ति के पैंतालीस दिनों के भीतर दी जाएगी ।

(5) उपधारा (4) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी ।

25. **मानीटर करना और रिपोर्ट करना** – (1) यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग, प्रत्येक वर्ष के अंत के पश्चात्, यथासाध्यशीघ्रता से उसे वर्ष के दौरान इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के संबंध में एक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसकी एक प्रति समुचित सरकार को भेजेगा ।

(2) प्रत्येक मंत्रालय या विभाग, अपनी अधिकारिता के भीतर लोक प्राधिकारियों के संबंध में, ऐसी सूचना एकत्रित करेगा और उसे यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को उपलब्ध कराएगा, जो इस धारा के अधीन रिपोर्ट तैयार करने के लिए अपेक्षित है और इस धारा के प्रयोजनों के लिए, उस सूचना को देने तथा अभिलेख रखने से संबंधित अपेक्षाओं का पालन करेगा ।

(3) प्रत्येक रिपोर्ट में, उस वर्ष के संबंध में, जिससे रिपोर्ट संबंधित है निम्नलिखित के बारे में कथन होगा, –

(क) प्रत्येक लोक प्राधिकारी से किए गए अनुरोधों की संख्या ;

(ख) ऐसे विनिश्चयों की संख्या, जहां आवेदक अनुरोधों के अनुसरण में दस्तावेजों तक पहुंच के लिए हकदार नहीं थे, इस अधिनियम के वे उपबंध, जिनके अधीन ये विनिश्चय किए गए थे और ऐसे समयों की संख्या, जब ऐसे उपबंधों का अवलंब लिया गया था ;

(ग) पुनर्विलोकन के लिए यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को निर्दिष्ट की गई अपीलों की संख्या, अपीलों की प्रकृति और अपीलों के निष्कर्ष ;

(घ) इस अधिनियम के प्रशासन के संबंध में किसी अधिकारी के विरुद्ध की गई अनुशासनिक कार्रवाई की विशिष्टियां ;

(ङ) इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक लोक प्राधिकारी द्वारा एकत्रित की गई प्रभारों की रकम ;

(च) कोई ऐसे तथ्य, जो इस अधिनियम की भावना और आशय को प्रशासित और कार्यान्वित करने के लिए लोक प्राधिकारियों के किसी प्रयास को उपदर्शित करते हैं ;

(छ) सुधार के लिए सिफारिशें, जिनके अंतर्गत इस अधिनियम या अन्य विधान या सामान्य विधि के विकास, समुन्नति, आधुनिकीकरण, सुधार या संशोधन के लिए विशिष्ट लोक प्राधिकारियों के संबंध में सिफारिशें या सूचना तक पहुंच के अधिकार को प्रवर्तनशील बनाने से सुसंगत कोई अन्य विषय भी हैं ।

(4) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, प्रत्येक वर्ष के अंत के पश्चात्, यथासाध्यशीघ्रता से, उपधारा (1) में निर्दिष्ट, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग की रिपोर्ट की एक प्रति संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष या जहां राज्य विधान-मंडल के दो सदन हैं, वहां प्रत्येक सदन के समक्ष और जहां राज्य विधान-मंडल का एक सदन है वहां उस सदन के समक्ष रखवाएगी ।

(5) यदि केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को ऐसा प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का प्रयोग करने के संबंध में किसी लोक प्राधिकारी की पद्धति, इस अधिनियम के उपबंधों या भावना के अनुरूप नहीं है तो वह प्राधिकारी को ऐसे उपाय विनिर्दिष्ट करते हुए, जो उसकी राय में ऐसी अनुरूपता को बढ़ाने के लिए किए जाने चाहिएं, सिफारिश कर सकेगा ।

26. **समुचित सरकार द्वारा कार्यक्रम तैयार किया जाना** – (1) समुचित सरकार, वित्तीय और अन्य संसाधनों की उपलब्धता की सीमा तक –

(क) जनता की, विशेष रूप से, उपेक्षित समुदायों की इस बारे में समझ की, वृद्धि करने के लिए, कि इस अधिनियम के अधीन अनुध्यात अधिकारों का प्रयोग कैसे किया जाए शैक्षिक कार्यक्रम बना सकेगी और आयोजित कर सकेगी ;

(ख) लोक प्राधिकारियों को, खंड (क) में निर्दिष्ट कार्यक्रमों को बनाने और उनके आयोजन में भाग लेने और ऐसे कार्यक्रमों का स्वयं जिम्मा लेने के लिए प्रोत्साहित कर सकेगी ;

(ग) लोक प्राधिकारियों द्वारा उनके क्रियाकलापों के बारे में सही जानकारी का समय से और प्रभावी रूप में प्रसारित किए जाने को बढ़ावा दे सकेगी ;

(घ) लोक प्राधिकरणों के, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारियों या राज्य लोक सूचना अधिकारियों को प्रशिक्षित कर सकेगी और लोक प्राधिकरणों द्वारा स्वयं के उपयोग के लिए सुसंगत प्रशिक्षण

सामग्रियों का उत्पादन कर सकेगी ।

(2) समुचित सरकार, इस अधिनियम के प्रारंभ से अठारह मास के भीतर, अपनी राजभाषा में, सहज व्यापक रूप और रीति से ऐसी सूचना वाली एक मार्गदर्शिका संकलित करेगी, जिसकी ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा युक्तियुक्त रूप में अपेक्षा की जाए, जो अधिनियम में विनिर्दिष्ट किसी अधिकार का प्रयोग करना चाहता है ।

(3) समुचित सरकार, यदि आवश्यक हो तो, उपधारा (2) में निर्दिष्ट मार्गदर्शी सिद्धांतों को नियमित अंतरालों पर अद्यतन और प्रकाशित करेगी, जिनमें विशिष्टतया और उपधारा (2) की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निम्नलिखित सम्मिलित होगा –

(क) इस अधिनियम के उद्देश्य ;

(ख) धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त प्रत्येक लोक प्राधिकरण के, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी का डाक और गली का पता, फोन और फैक्स नंबर और यदि उपलब्ध हो तो उसका इलैक्ट्रोनिक डाक पता ;

(ग) वह रीति और प्ररूप जिसमें, यथास्थिति, किसी केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी से किसी सूचना तक पहुंच का अनुरोध किया जाएगा ;

(घ) इस अधिनियम के अधीन लोक प्राधिकरण के, यथास्थिति, किसी केन्द्रीय लोक सूचना या राज्य लोक सूचना अधिकारी से उपलब्ध सहायता और उसके कर्तव्य ;

(ङ) यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग से उपलब्ध सहायता ;

(च) इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त या अधिरोपित किसी अधिकार या कर्तव्य के संबंध में कोई कार्य करने या करने में असफल रहने के बारे में विधि में उपलब्ध सभी उपचार, जिनके अंतर्गत आयोग को अपील फाइल करने की रीति भी है ;

(छ) धारा 4 के अनुसार अभिलेखों के प्रवर्गों के स्वैच्छिक प्रकटन के लिए प्रावधान करने वाले उपबंध ;

(ज) किसी सूचना तक पहुंच के लिए अनुरोधों के संबंध में संदत्त की जाने वाली फीसों से संबंधित सूचनाएं ; और

(झ) इस अधिनियम के अनुसार किसी सूचना तक पहुंच प्राप्त करने के संबंध में बनाए गए या जारी किए गए कोई अतिरिक्त विनियम या परिपत्र ।

(4) समुचित सरकार को, यदि आवश्यक हो, नियमित अंतरालों पर मार्गदर्शी सिद्धांतों को अद्यतन और प्रकाशित करना चाहिए ।

27. **नियम बनाने की समुचित सरकार की शक्ति** – (1) समुचित सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी विषय के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन प्रसारित की जाने वाली सामग्रियों के माध्यम की लागत या प्रिन्ट लागत मूल्य ;

(ख) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन संदेय फीस ;

(ग) धारा 7 की उपधारा (1) और उपधारा (5) के अधीन संदेय फीस ;

(घ) धारा 13 की उपधारा (6) और धारा 16 की उपधारा (6) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के निबंधन और शर्तें ;

(ङ) धारा 19 की उपधारा (10) के अधीन अपीलों का विनिश्चय करते समय, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ;

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किए जाने के लिए अपेक्षित हो या विहित किया जाए ।

28. **नियम बनाने की सक्षम प्राधिकारी की शक्ति** – (1) सक्षम प्राधिकारी, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियम बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी विषय के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(i) धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन प्रसारित की जाने वाली सामग्रियों के माध्यम की लागत या प्रिन्ट लागत मूल्य ;

(ii) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन संदेय फीस ;

(iii) धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन संदेय फीस ; और

(iv) कोई अन्य विषय, जो विहित किए जाने के लिए अपेक्षित हो या विहित किया जाए ।

29. **नियमों का रखा जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह ऐसी कुल तीस दिन की अवधि के लिए सत्र में हो, जो एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकती है, रखा जाएगा और यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं या दोनों सदन इस बात से सहमत हो जाएं कि ऐसा नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो ऐसा नियम तत्पश्चात्, यथास्थिति, केवल ऐसे उपांतरित रूप में ही प्रभावी होगा या उसका कोई प्रभाव नहीं होगा । तथापि, उस नियम के ऐसे उपांतरित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किसी राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम अधिसूचित किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

30. **कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति** – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध बना सकेगी, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों, जो उसे कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक और समीचीन प्रतीत होते हों :

परन्तु कोई ऐसा आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

31. निरसन – सूचना स्वातंत्र्य अधिनियम, 2002 (2003 का 5) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

पहली अनुसूची
[धारा 13(3) और धारा 16(3) देखिए]

मुख्य सूचना आयुक्त/सूचना आयुक्त/राज्य मुख्य सूचना आयुक्त/राज्य सूचना आयुक्त द्वारा ली जाने वाली शपथ या किए जाने वाले प्रतिज्ञान का प्ररूप

"मैं, जो ---मुख्य सूचना आयुक्त/सूचना आयुक्त/राज्य मुख्य सूचना आयुक्त/राज्य सूचना आयुक्त नियुक्त हुआ हूं, ईश्वर की शपथ लेता हूं / सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा, मैं भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा तथा मैं सम्यक् प्रकार से और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करूंगा तथा मैं संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखूंगा ।" ।

दूसरी अनुसूची

(धारा 24 देखिए)

केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित आसूचना और सुरक्षा संगठन

1. आसूचना ब्यूरो ।
2. मंत्रिमंडल सचिवालय के अनुसंधान और विश्लेषण खंड ।
3. राजस्व आसूचना निदेशालय ।
4. केन्द्रीय आर्थिक आसूचना ब्यूरो ।
5. प्रवर्तन निदेशालय ।
6. स्वापक नियंत्रण ब्यूरो ।
7. वैमानिक अनुसंधान केन्द्र ।
8. विशेष सीमान्त बल ।
9. सीमा सुरक्षा बल ।
10. केन्द्रीय आरक्षित पुलिस बल ।
11. भारत-तिब्बत सीमा बल ।
12. केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल ।
13. राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड ।
14. असम राइफल्स ।

[1][15. सशस्त्र सीमा बल ।]

16. आयकर महानिदेशालय (अन्वेषण) ।
17. राष्ट्रीय तकनीकी अनुसंधान संगठन ।
18. वित्तीय आसूचना यूनिट, भारत ।

[2][19. विशेष संरक्षा ग्रुप ।]

20. रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन ।
21. सीमा सड़क विकास बोर्ड ।
22. राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् सचिवालय ।

---

[1] सा. का. नि. 347, तारीख 28.9.2005 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] सा. का. नि. 347, तारीख 28.9.2005 द्वारा (28.9.2005 से) अंत:स्थापित ।